Chapter-4

चौथा अध्याय

विवेच्य हिन्दी उपन्यासों में मध्यमवर्ग की विविध समस्याएँ

हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त मध्यमवर्गीय समस्याएँ:

साठोत्तरी दशक के उपन्यासों में मध्यमवर्गीय व्यक्ति, समाज और समस्याओं का अंकलन किया है। इन उपन्यासों में जो भी पात्रों को समाहृत किया गया है, वे सामायिक समस्याओं से जुड़े हुए हैं। इन उपन्यासों में वेश्या समस्या, वैवाहिक जीवन की समस्याएँ, पूर्वाकर्षण की समस्या, विवाहोत्तर आकर्षण की समस्या, यौन समस्या, विधवा जीवन की समस्या, दहेज समस्या, पारिवारिक विघटन, मध्यमवर्गीय समाज की निराशा, कुण्ठा और विवशता, नैतिक मूल्यों का ह्रास, अनमेल–विवाह, नारी समानता, स्वतंत्रता–मुक्ति, अन्तर्जातीय विवाह आदि मध्यमवर्गीय समाज में प्रवर्तमान विभिन्न समस्याओं का उल्लेख किया गया है।

संयुक्त परिवारों का विघटन:

बढ़ती हुई बेरोजगारी, शिक्षा का विकास, पश्चिमी प्रभाव और चरमराती आर्थिक व्यवस्था ने मध्यमवर्गीय समाज में तनाव की स्थिति पैदा कर दी है। इन परिस्थितियों का सबसे गहरा प्रभाव मध्यमवर्गीय व्यक्ति पर पड़ा। फलस्वरूप संकुचित मानस के कारण मध्यमवर्गीय संयुक्त कुटुंब टूटने लगे। ''आंतरिक आत्मीयता, जो संयुक्त परिवार की आधारशिला रही थी, अब उसका अभाव निरंतर बढ़ता जा रहा है। परिवार का आर्थिक ढाँचा परम्परागत परिवारों से सर्वथा भिन्न होता जा रहा है। औद्योगिकरण के पश्चात् एवं शिक्षा तथा यातायात की सुविधा के कारण व्यक्तिवादिता से अर्थमूलक वृत्तिने परिवार को सीमित कर किया है।''[1]

संयुक्त परिवार में प्रायः नष्ट होती हुई आत्मीय भावना को उद्घाटित करते हुए लिखा है: ''दिन–दिन परिवार बढ़ता जाता है। उनके भरण–पोषण और विवाह के खर्च का बोझ मन माना लादा जाता है। होते–होते वह घराना या तो नष्टप्राय हो जाता है या रहा भी तो किसी गिनती में नहीं।''[2]

संयुक्त परिवारों में हरेक व्यक्ति के विचार मतभेद के कारण कुटुंब में खटराग होता है। भौतिकवादी दुनिया में स्वार्थ लोलुप व्यक्ति सिर्फ अपने बारे में सोचता है। संपत्ति के लिए भाई–भाई का गला काटने को

तैयार होता है। एक–दूसरे का मुँह देखना गँवारा होता तो साथ रहने के बारे में सोच भी नहीं सकते। डॉ. राजेन्द्र प्रताप ने अपने आलोच्य ग्रंथ में एक जगह लिखा है ''संयुक्त परिवार में या तो किसी व्यक्ति की उन्नति करने की सम्भावना ही समाप्त हो जाती है या फिर यदि कोई व्यक्ति प्रतिभाशाली निकला भी तो उसकी दुर्गति हो जाती है।''[3]

संयुक्त परिवार में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाता। उसका सारा समय पारिवारिक समस्याएँ सुलझाने में ही चला जाता है। कुल मिलाकर संयुक्त परिवार का वातावरण झगड़ा, खींचतान, दुःख, मुसीबत को झेलता हुआ घुटनयुक्त हो जाता है। साठोत्तरी मध्यमवर्गीय उपन्यासों में ज्यादातर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण दिखाई देता है, जिसके फलस्वरूप संयुक्त परिवार की नींव हिल गई है। इस दृष्टिकोण के कारण हरेक मध्यमवर्गीय व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं को पूर्ण करने परिवार से अलग हो जाता है। ''संयुक्त परिवार के बिखरने का एक कारण है जन संख्या की वृद्धि। इससे आवासीय समस्या आ खड़ी हुई। अतः परिवार के सभी सदस्य निर्भर नहीं रह सकते थे। अतः और काम की खोज में सदस्य अपने मूल परिवार को छोड़ने को बाध्य हुए।''[4]

वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में संयुक्त परिवार की प्रणाली अव्यवहारिक प्रतीत होती है। चेतना में भूले बिसरे चित्र के संयुक्त परिवार के संयुक्त परिवार के टूटने का वर्णन पिछले पृष्ठों में आकलित है। एक की कमाई पर पूरा परिवार बैठकर खाए और निकम्मा बने यह न तो न्यायोजित है न मानवीय। इस स्थिति में संयुक्त परिवार का टूटना ही सर्वप्रकार उचित है। यही बात ज्वालाप्रसाद अपने चाचा को समझाता है कि उसने जो कुछ उन लोगों से कहा है वह उसके और उनके दोनों के हित में है: ''लड़कों से कहिए कि ईमानदार बनें और मेहनत करें। मेरे साथ रहकर ये सब लोग आवारा, कामचोर, बेईमान और लूटेरे बन रहे हैं। आखिर इनकी जिन्दगी को सुधारना आपका कर्तव्य है।''[5]

मध्यमवर्ग अपनी परंपरागत रुढ़ि के कारण संयुक्त परिवार में रहना चाहता है लेकिन इस कारण उन्हें अनेक विडम्बनाओं को सहन करना पड़ता है। नरेश मेहता कृत 'दो एकान्त' उपन्यास के अंतर्गत इसका सुन्दर उदाहरण दिखाया गया है: ''ठीक है, उसने हटात् चोट को वैसा ही सहा जैसे शीशे पर जोर का प्रहार हुआ हो, और शीशा चूर हो उठने पर टूटकर गिरा हो, बस वैसे री टूटापन अपने अन्दर में लिये वह संयुक्त दिख भर रही है, है नहीं। उसने तो कभी विवेक पर वह व्यक्त नहीं किया। चूँकि वह अमूल्य दर्पण है, इसलिए टूटा होने पर विशिष्ट है। अतः वह भार वहन करे।''[6]

मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार में धनोपार्जन करनेवाला व्यक्ति कुटुंब के अन्य सदस्यों का कर्ताहर्ता होता है। लेकिन आज बदलते नैतिक मूल्यों के कारण संयुक्त परिवार का विघनट होता जा रहा है। आज की अर्थव्यवस्था में समतोलन बनाने के लिए हरेक सदस्य को धनोपार्जन करना चाहिए। भगवती प्रसाद वाजपेयी का 'भूले बिसरे चित्र' में ज्वालाप्रसाद की कमाई के सम्बन्ध में धिनका का कथन देखा जा सकता है। वह यमुना से कहती हैः ''जबरदस्ती हमारे भण्डार घर की चाबी छीन लीन्हिन। फतहपुर के घर की मालकिन बन बैठी। बेदर्दी के साथ खरच होई। ज्वाला विचरऊ पिस के कमई है और ई सण्ड-मुसण्ड चचेर भाई हुकम के खई है।''[7]

इस उपन्यास में जैदई का पुत्र लक्ष्मीचंद विवाहोपरांत अपनी माँ से पृथक् रहता है। आज के मध्यमवर्गीय युवा अपनी स्वतंत्र विचारशैली को अमल में नहीं रख सकते, इस वजह से वह एकांगी परिवार के लिए कटिबद्ध रहते हैं। 'झूठा सच' में यह बात प्रतिबिंबित हुई है। कनक और पुरी के माता-पिता उनके साथ रहना चाहते हैं, लेकिन आवास की कठिनता होने पर वह अलग घर ढूँढकर पृथक हो जाते हैं। उससे उनके मन में आनंद व्याप्त हो जाता है। ''सास-ससुर और परिवार के चले जाने से घर में भर गया सूनापन उड़ गया। घर प्रेमोन्मत्त मिथुन के कूंजन और घूटरघुँ से भर गया. कनक और पुरी को प्रेम में उन्माद में आत्मविस्मृत होने का अवसर मिला।''[8] डॉ. राजेन्द्र प्रताप ने लिखा हैः ''परस्पर विचारों के समान होने पर 'अन्धेरे बंद कमरे' के पति-पत्नी हरबंस और नीलिमा के मानसिक द्वंद्व में पारिवारिक विघटन को लक्ष्य किया जा सकता है।''[9] हरबंस जब विदेश जाते हुए अपनी पत्नी नीलिमा को पत्र लिखता है उस समय भी एकांगी परिवार में भी अलगाव का बोध देखने को मिलता है। ''मुझे बहुत दिनों से लग रहा था कि हम दोनों साथ-साथ रहकर सुखी नहीं रह सकते। मगर अपने देश में रहते हुए एक सामाजिक परिस्थिति मुझे तुम्हारे साथ रहने को मजबूर कर रही थी। आज इस डेक पर खुले समुद्र के बीच मैं अपने आपको उस मजबूरी से मुक्त समझता हूँ।''[10]

जनसंख्या की अधिकता की वजह से भी मध्यमवर्गीय संयुक्त परिवार में विघटन देखने को मिलता है। ''एकांगी परिवार की सदस्य संख्या बहुत सीमित हो गयी है। जिसमें पति-पत्नी तथा बच्चे ही सामाजिक इकाई के रूप में आते हैं।''[11]

मध्यमवर्गीय, सदस्य उसमें भी खास तौर पर आर्थिक रूप से स्वतंत्र व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं को, इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए संयुक्त परिवार अडचनरूप लगता है। वह हमेशा संयुक्त परिवार से विभक्त

होना चाहता है। नरेश मेहता कृत 'यह पथबन्धु था' उपन्यास में मध्यमवर्गीय पिता इस स्थिति से त्रस्त होकर कहते हैं:''अब दुनियाभर के छल–प्रपंच मेरी तो समझ में नहीं आते। होगा जिसे रहना है रहे। नाक–भौं सिकोड़कर किसी को रहने की जरुरत नहीं। जहाँ सींग समाये वहीं जाये।''[12]

''एकांगी परिवार में परम्परागत नीति मूल्यों का ह्रास होता गया। सारी जिम्मेदारियाँ एक ही व्यक्ति पर आ गयीं तो वह अधिक कार्यशील बन गया और अधिक से अधिक कमाने की ओर अग्रसर हुआ। अपना जीवन, अपना भविष्य वह खुद ही निर्माण करने लगा।''[13]

अमृतलाल नागर के मध्यमवर्गीय समस्याओं से सम्बन्धित उपन्यास 'अमृत और विष' में मंझली बहू सरस्वती अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहती है, जिसके फलस्वरूप संयुक्त परिवार में विषमता देखने को मिलती है। ''एक सम्मिलित कुटुंब सिद्धान्त का महात्म्य था, आज उससे हमारे समाज के अधिकाधिक व्यक्तियों को घुटन महसूस होती है।''[14]

सच्चिदानंद 'धूमकेतु' के उपन्यास 'माटी की महक' में भी संयुक्त परिवार का विघटन देखने को मिलता है। मोहन का हवेली में मन नहीं लगता। हवेली की मर्यादा के लिए उसके नियम में वह नहीं बंधना चाहता। वह कहता है:''आखों पर इज्ज़त का झूठा पर्दा जब तक पड़ा रहेगा तब तक सच्चाई की ओर नजर नहीं उठेगी। छोटी–छोटी बात भी खानदान की इज्जत को ललकारने वाली सिद्ध होगी।''[15] यहाँ पर मोहन की व्यवहारिक दृष्टि देखने को मिलती है। इस कारण वह अपने परिवार को छोड़कर शहर चला जाता है।

मध्यमवर्गीय परिवार में हमेशा बहुओं की वजह से आये दिन झगड़े होते दिखायी देते हैं। रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ' में यह बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। इस उपन्यास में दो भाईओं धनपाल और बनवारी में हमेशा बहस चलती रहती है। आखिरकार परिवार में हररोज दो बहुओं के झगड़े से तंग आकर धनपाल ने कह दिया ''अलग हो जाओ और मरो।''[16] अपने भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण की वजह से आखिर में दोनों भोई अलग हो जाते हैं। उनका संयुक्त परिवार टूट जाता है। धनपाल के दोनों बेटे वंशी और अर्जुन भी अलग हो जाते हैं।

प्रत्येक नवीन मूल्य एवं धारणा सामाजिक संगठन तथा व्यवस्था को प्रभावित करती हुई समाज परिवर्तन का कारण बनती है। चूँकि परिवार समाज की समस्त संस्थाओं का प्रारंभिक समूह है अतएव सामाजिक परिवर्तनों ने मनुष्य की इसी आधारभूत सामाजिक संस्था को सर्वाधिक प्रभावित किया है। वैवाहिक संबंधों में भावात्मकता के स्थान पर बौद्धिकता के महत्व ने संयुक्त परिवार के साथ मूल परिवारों

के आधार स्तंभों को ही प्रभावित किया है। 'दो एकान्त' के विवेक और वानीरा इसके उदाहरण हैं। ''विवेक स्वयं को परिवार का संरक्षक मानता है किन्तु परिवार के बदलते मूल्यों के कारण वह असमर्थ होता है। विवेक–वानीरा के वैवाहिक सम्बन्ध की विडम्बना में विवेक का स्वयं को गृहिस्थीरूपी रथ का सारथि मानते हुए न उतरना एवं वानीरा का टूटे दर्पण को संजोकर न रचने की आकांक्षा पारिवारिक विघटन को दिग्दर्शित करती है।''[17]

साठोत्तरी उपन्यासों के मध्यमवर्गीय परिवारों में आज पारिवारिक सम्बन्धों में प्रेम भावना के स्थान पर बौद्धिक तत्व ने स्थान लिया है। जिससे नवीन पारिवारिक मूल्य उद्घाटित हुए हैं। रमेश बक्षी कृत 'बैसाखियोंवाली इमारत' में मध्यमवर्गीय नायिका का कथन नवीन पारिवारिक मूल्यों को उद्घाटित करता है। ''मैं आपको झटक नहीं सकती। इसलिये कि मेरे मूल्य और मेरे तर्क और मेरी दृष्टि आप से अलग होकर कुछ सोचने को तैयार ही नहीं है। अन्तर केवल इतना है कि बिना कुछ सोचे समझे एक व्योम में आप चाहें जो कर गुजरना चाहते हैं, और मैं जो कुछ भी करना चाहती हूँ, उसके लिए रास्ता बनाती हूँ। मैंने अब तक यदि आपका अस्वीकार किया है तो, और स्वीकार किया है तो।''[18]

'रुकोगी नहीं राधिका' में पारिवारिक कुण्ठाओं के कारण परिवार में विषमता देखने को मिलती है। राधिका पिता के पुनर्विवाह को अस्वीकार करती है। पिता जी के इस निर्णय ने राधिका के जीवन में कोलाहल मचा दी है। उसका मन वेदना, घुटन और ग्लानि से भर जाता है। पिता की दूसरी पत्नी विद्या को परिवार में प्रेम न मिलने से, अपना स्थान आसित न कर पाने की वजह से आत्महत्या कर लेती है। इस प्रकार राधिका का परिवार भी नवीन आधुनिक विचारशैली ग्रहण करने की वजह से छीन–भिन्न हो जाता है। स्वयं राधिका भी पिताजी के घर में अपना स्थान निश्चित न बना पाने को कारण अपनी अलग दुनिया बना लेती है।

जयश्री बारहट्टे ने अपने आलोचनात्मक ग्रंथ में लिखा है कि: ''परिवार की नई मान्यताएँ जीवन धारा को बदल देती हुई दिखाई देती हैं। भावना के स्थान पर बौद्धिकता, आर्थिक स्वातंत्र्य की भावना, समष्टि के स्थान पर व्यष्टि का महत्व, नारी विद्रोह, धर्म में अनास्था आदि कारणों ने संयुक्त परिवार विघटन एवं एकांगी परिवार को उजागर किया है। पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव और परिवर्तित जीवन मूल्य के कारण परिवार में नये नैतिकता के प्रतिमान उदित किया हैं।''[19]

चंद्रकांता कृत 'एलान गली जिंदा है'' में दिखाया है कि परंपरा से गली में संयुक्त परिवार चले आ रहे हैं। लेकिन अब वे काँच के बरतन की तरह टूट रहे हैं। मध्यमवर्गीय शिक्षित बहू–विवाह उपरांत तुरंत

अपनी रसोई अलग पकाना चाहती है। दादी, सास–ससुर, जेठ–जेठानी की धाक उन्हें सुहाती नहीं। संसारचंद और अरुंधती बुढापे में गृहस्थी का भार बेटों पर सौंपकर निश्चिंत होना चाहते हैं। लेकिन बेटे जघा, मखना और उनकी बहुएँ संयुक्त परिवार में रहना स्वीकार नहीं करतीं। परिणामस्वरूप घर में क्लेष होता है। अरुंधती ने उसका मार्ग निकालते हुए बहुओं का चौका–चूल्हा अलग कर दिया। ''एक घर में तीन घर हो गए हैं। जवा अपनी पत्नी को लेकर अलग बस रहा है। मखना अपनी पत्नी और दो बच्चों को लेकर। अरुंधती का चौका–चूल्हा भी अलग हो गया है।''[20] जवा और मखना में उत्तरदायित्व और आत्मकेंद्रीयता पाई जाती है। माता पिता का संभाल कौन करे इससे दोनों कतराते हैं। अंततः माता–पिता छःछः मास दोनों के पास रहे। इस प्रकार का फैसला होता है। इसी उपन्यास में महिपसिंह की चारों बहुएँ शिक्षित होने की वजह से संयुक्त परिवार में रहना नहीं चाहतीं।

वर्तमान मध्यमवर्गीय व्यक्ति 'संयुक्त परिवार' से 'सरल परिवार' की ओर अग्रसर हो रहा है। ''ज्यों–ज्यों व्यक्ति का सामाजिक क्षेत्र विस्तृत होता गया त्यों–त्यों उसका पारिवारिक क्षेत्र संकुचित होता गया। विश्व समाज का स्वप्न देखने वाला मानव लघु परिवारों के सृजन में संलग्न है। बृहत् से लघु की प्रतिष्ठा आज का युगधर्म है। इसीलिए विज्ञान ने अणु को छोड़कर परमाणु की स्वतंत्र सत्ता को उद्‌घाटित किया है।''[21]

'जल टूटता हुआ' में रामकुमार के संयुक्त परिवार में सदा कलह बना रहता है। 'किन्तु परिवार में अब गांठ पड़ गई, रोज–रोज यह परिवार कहीं न कहीं टकरा जाता है।.... बस झगड़ा ही झगड़ा, घर नरक–सा बन गया।''[22] इसका अन्त आणविक परिवार में आकर ही होता है। 'अनन्तर' का प्रकाश परिवार के विषय में अपना मत प्रकट करता हुआ कहता हैः ''हिन्दुस्तान में कुकन एक कोल्हू होता है। लड़का उसमें जुते और चकराता रहे।''[23] प्रकाश इस संयुक्त परिवार में रहना नहीं चाहता है। वह स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करना चाहता है।

'गिरते महल' का ब्रजलाल भागीरथलाल के टूटते परिवार के लिये सम्मति देता हैः ''परिवार का बँटवारा करके इसे विखंडित कर दो। इस कारण कि इस परिवार की आयु समाप्त हो गई है। अब इस बरगद के पेड़ की शाखाएँ जमीन को छूने लगी हैं और अब नये पेड़ों को बनायेंगी, नए परिवार स्थापित होंगे।''[24] बाबू ब्रजलाल परिवार के बारे में कहते हैं, परिवार तो चलेगा। जहाँ पुरुष और स्त्री इकट्ठे होंगे वहीं परिवार बन जाएगा और इकट्ठे हुए बिना रहेंगे नहीं। संयोग होगा और परिवार बनेंगे।''[25] ''किन्तु वे परिवार मौसमी

पौधों की भाँति अल्पकालीन होंगे और अल्पविस्तारवाले होंगे।''[26]

वर्तमान समय में आधुनिक शिक्षित पति–पत्नी दोनों अर्थोपार्जन के चक्कर में पड़कर अपनी गृहस्थी को खुद ही तोड़ने में लगे हैं। ''वर्तमान अर्थप्रधान युग में जहाँ पति–पत्नी दोनों अर्थोपार्जन रत हैं, मूल परिवार के बच्चों के पालन–पोषण हेतु भी अन्य संगठनों का सहारा लेना पड़ता है। चूल्हे–चौके का स्थान होटलों ने छीन लिया है। इस प्रकार संयुक्त परिवार की बात तो दूर, आज मूल परिवारों का आधार–स्तंभ भी लड़खड़ाने लगा है।''[27]

इस प्रकार, साठोत्तरी मध्यम वर्ग से सम्बन्धित उपन्यासों में हम देख सकते हैं कि आर्थिक व्यवस्था एवम् पाश्चात्य प्रभाव के कारण संयुक्त परिवार टूटने की समस्या प्रखर रूप से सामने आयी है। साथ–साथ नवीन नैतिक मूल्यों की वजह से एकांगी परिवारों का क्लेष भी दिखाया गया है।

पारंपरिक नैतिक मूल्यों का ह्रासः

साठोत्तरी उपन्यासों में हम देख सकते हैं कि मध्यमवर्ग में नैतिकता से संबंधित सामाजिक नियम नहीं हैं, वरन् वह व्यक्तिगत हैं। इसलिए एक व्यक्ति के विचार दूसरे व्यक्ति के विचारों से भिन्न होते हैं। लेकिन समाज के द्वारा, धार्मिक संस्थाओं के द्वारा बनाये गये नियम व्यक्ति की उच्छृंखलता पर प्रतिबंध लगाते हैं। आज शिक्षित मध्यमवर्ग समाज में गर्भ–निरोधक साधनों का उपयोग, गर्भपात, सेक्स सम्बन्धी मुक्त विचार, विवाहेत्तर सम्बन्ध, प्रेम और यौन समस्या आदि सामान्य बात बनकर रह गई है। धर्म के प्रति अनास्था, अरुचि की भावना फैल गई है।

साठोत्तरी मध्यमवर्ग से संबंधित उपन्यासों में नैतिकता के नये मानदंड देखने को मिलते हैं। ''सामने प्रतिष्ठित सत्य एवं स्वीकृत मानदण्ड झूठे पड़ गए हैं, और न केवल समाज के प्रति वरन् स्वयं अपने प्रति विद्रोह करने के लिए आकुल है, प्रयत्नशील है। उसके लिए सारे सन्दर्भ अर्थहीन हो गये हैं और नैतिक मान्यताएँ, बल्कि सारी की सारी आचारसंहिताएँ खोखली एवं जर्जर पड़ गयी हैं। जितना ही वह (व्यक्ति) सार्थक अर्थ प्राप्त करने की चेष्टा करता है, उसमें व्यर्थता का बोध गहराता जा रहा है और वह असमर्थ होता जा रहा है।''[28]

'अमृत और विष' की बानो अस्मिता बेचकर आज़ाद जिन्दगी चाहती है। नैतिकता को महत्व न देकर वह प्रेमी के पास भागने के लिए रमेश की हर तरह की फीस देने के लिए तैयार है।

'मछली मरी हुई' उपन्यास में शीरीं पति नहीं चाहती, लेकिन समलैंगिक यौनाचार से पीड़ित अपनी बड़ी बहन की बाँहें चाहती है। ''एक दिन बड़ी बहन ने बियर से भरे गिलास के साथ समझाया कि दो औरतें भी परस्पर शारीरिक जीवन बिता सकती हैं।''[29]

'एक पति के नोट्स' में नायक अपनी पत्नी के साथ एकरसता से खिन्न होकर अपनी पड़ौसी की पत्नी के साथ शारीरिक सम्बन्ध बाँधता है लेकिन उससे कुछ नवीनता नहीं प्राप्त होती। वह सोचता हैः ''अभी कुछ वह नहीं था जो सीता के साथ होता रहा है। इतना ही नहीं, यह सीता के साथ ही हुआ है, सन्ध्या के साथ नहीं।''[30]

'शहर में घूमता आईना' में भी पति–पत्नी के सम्बन्धों में वही विश्वासघात दिखाई देता है। नैतिक मूल्यों से नायक विचलित हो जाता है। मध्यमवर्गीय नायक चेतन अपनी पत्नी की अपेक्षा अधिक सुन्दर साली की ओर लालायित होता है, किन्तु साली का विवाह हो जाने के पश्चात् वह पुनः अपनी पत्नी के पास वापस चला आता है।

कृष्णा सोबती कृत 'मित्रो मरजानी' की स्त्री पात्र यौनतृप्ति के सामने नैतिकता को कुछ नहीं मानती। उसका कथन हैः ''मेरी इस देह में इतनी प्यास है, इतनी प्यास है कि मछली सी तड़पती हूँ।''[31]

मध्यमवर्गीय समाज में दाम्पत्य सम्बन्धी नैतिक मान्यताएँ टूटने लगी हैं। सम्बन्धों की एकनिष्ठा बहुत ही कम दिखाई देती है। 'अंधेरे बंद कमरे' में हरबंस और नीलिमा एक–दूसरे के साथ एक ही छत के नीचे रहकर भी एक–दूसरे से अलग हों, इस प्रकार रहते हैं। हरबंस मध्यमवर्गीय पुरुष पात्र की तरह उस पर अधिकार जमाना चाहता है जबकि नीलिमा आज की शिक्षित आधुनिक नारी की तरह स्वतंत्र रहना चाहती है।

'राग–दरबारी' उपन्यास में व्यंग्यात्मक रूप से नैतिक मूल्यों का पतन दिखाया है। 'राग–दरबारी' का मध्यमवर्गीय पात्र गयादीन नैतिकता के बारे में कहता हैः ''नैतिकता समझ लो कि एक चौकी है। एक कोने में पड़ी है। सभा–सोसायटी के वक्त इस पर चादर बिछा दी जाती है। तब बड़ी बढ़िया दिखती है। इस पर चढ़कर लेक्चर फटकार दिया जाता है। यह उसी के लिए है।''[32] गयादीन की बेटी बेला यौन–भूख–नैतिकता की सारी सीमाएँ तोड़ देती है। वह कुँवारेपन में ही वैवाहिक जीवन के सुख भोग चुकी है।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास में नैतिक गिरावट के कारण श्यामला को प्राप्त करने के लिए जीवनराम गबन करता है। आज के समाज में व्याप्त दुश्चरित्र, बेईमानी व भ्रष्टाचारी सब नैतिक मूल्यों के

पतन के कारण ही व्याप्त हैं। 'सामर्थ्य और सीमा' के प्रसिद्ध उद्योगपति मकोला इस सम्बन्ध में मंत्री जोखनलाल से कहते हैं: ''वर्तमान शासन व्यवस्था में बेईमानी और घटिया माल तैयार करने के लिए हम विवश हैं।''

'भूले बिसरे चित्र' में सतवन्ती भी अपनी अतृप्तियों के लिए गंगाप्रसाद की तरफ आकृष्ट होती है। इससे उसके पति राधाकिशन को भी फायदा होता है। ललित अरोड़ा ने इस उपन्यास की आलोचना में लिखा है: ''राधाकिशन सब जानते, समझते देखते हुए भी पत्नी सन्तो की नैतिक गिरावट को बढ़ावा देता है क्योंकि बदले में उसे सब–कुछ तो मिल रहा था। रुपया–पैसा, मान–मर्यादा। कभी–कभी सन्तो का मन इस झूठ–फरेब की दुनिया के प्रति वितृष्णा से भर उठता था किन्तु दूसरे ही क्षण, वर्तमान युग का सत्य पैसा, उसकी आँखों के आगे प्रश्न–चिन्ह छोड़ देता।''[33]

'बारह घण्टे' में लारेंस नैतिकता के बारे में कहती है: ''नैतिकता डर और लिहाज को नहीं कहना चाहिए। हमारी औचित्य और अनौचित्य सम्बन्धी धारणाएँ ही नैतिकता होती है।''[34]

जयश्री बारहट्टे ने लिखा है: ''पाप और पुण्य के विश्लेषण में कभी धर्म निर्णायक था, पर परिवर्तित दृष्टिकोण में धर्म के बजाय नैतिक दृष्टि से पाप–पुण्य का विवेचन होता दिखायी देता है। शुभ और अशुभ, उचित और अनुचित की धारणाओं में परिवर्तन दिखायी देता है। वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप विभिन्न संस्कृति के तत्व एक दूसरे में मिलते हुए दिखायी देते हैं। मानव ने अपनी सुविधानुसार नैतिकता के तत्व तैयार किये हैं। परम्परागत नैतिकता का 'हौवा' अब समाप्त हो चुका है।''[35]

'एक तारा' का जयन्त गिरे हुए पारंपरिक नैतिक मूल्यों के विषय में कहता है कि ''नीति–अनीति की कल्पना भी वर्ग के अनुसार बदलती है। वह प्रवाही है। आज की अति कल की नीति बन जाती है।''[36]

'मछली मरी हुई' में नैतिकता के बारे में लिखा गया है: ''पाप की नैतिकता भी नशा है, नैतिकता भी आदत है। नैतिकता भी आदमी को गुलाम और अन्धा बनाती है, जैसे किसी औरत का प्यार अन्धा बनाता है।''[37]

'चौदह फेरे' के अंतर्गत मध्यमवर्गीय नायिका मल्लिका भी नैतिकता के बारे में अपने मंतव्य स्पष्ट करती हुई कहती है: ''मनुष्य विवश होकर ही पाप करता है, स्वेच्छा से नहीं।''[38]

वर्तमान मध्यमवर्गीय समाज में कथनी और करनी में बड़ा अन्तर देखने को मिलता है। 'चूनूर की पीड़ा' का इन्दर पाप पुण्य को दुकानदारी मानता है।''[39] रांगेय राघव ने अपने उपन्यास 'दायरे' में एक

जगह लिखा हैः ''पाप और पुण्य समाज की व्यवस्था के कारण हैं।''[40]

जैनेन्द्र कृत 'अनन्तर' उपन्यास में अपराजित नैतिकता के बारे में कहती हैः ''आदमी आदमी के बीच जिसने शंका पैदा कर दी है उसे नैतिकता कहते हैं।''[41]

इस प्रकार मध्यमवर्गीय समाज के अंतर्गत व्यक्ति पाप और पुण्य, नैतिका और अनैतिकता, धर्म और अधर्म के मूल्यों को, उनके दायरों को अपनी आवश्यकता या सुविधानुसार बदलता रहता है।

विधवा–विवाहः

साठोत्तरी हिन्दी मध्यमवर्गीय उपन्यासों में विधवा समस्या को पर्याप्त महत्व दिया गया है। विधवा के लिए भी आर्थिक स्वावलंबन और सामाजिक सुरक्षा एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। परम्परागत सामाजिक प्रथाओं और मान्यताओं के कारण उनके चरित्र का लेखा–जोखा सूक्ष्म और पैनी दृष्टि से किया जाता है। विधवा स्त्री पर समाज बड़ी आसानी से दोषारोपण कर सकता है। उसको समस्त मानवीय अधिकारों से वंचित किया जाता है।

भारतीय समाज में पुरुषों को दूसरे विवाह की अनुमति है लेकिन स्त्री के लिए दूसरा विवाह अनैतिक माना जाता है। बालकृष्ण ने पुनर्विवाह के बारे में अपने आलोच्य ग्रंथ में लिखा हैः ''हिन्दू विवाह पद्धति की विडम्बना है कि पुरुष जितने चाहे, विवाह कर सकता है, परन्तु स्त्री के लिए यह अनैतिक माना जाता है। स्त्री पति के न रहने पर जीवन पर्यन्त उसी के नाम पर एकाकी जीवन बिताने के लिए बाध्य की जाती है, यह प्रकृति विरोधी है। प्रकृति विरुद्ध इन चुनौतियों ने ही समाज में पाखण्ड और भ्रष्टाचार का प्रसार किया है।''[42]

आज आधुनिक शिक्षा और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव स्वरूप विधवा पुनर्विवाह पर बल दिया जाता है। ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती आदि समाज सुधारकों ने भी अथक प्रयत्न किये। विधवा समस्या की अंतिम परिणति व्यभिचार में होती है और यही व्यभिचार अनेक सामाजिक कुरीतियों को जन्म देता है। इसलिए भी विधवा पुनर्विवाह आवश्यक है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी कृत 'चलते–चलते' में लाली का भाई पुनर्विवाह कर सकता है। उस समय लाली के मत में विद्रोह का स्वर उभरता है ''विधुर पक्ष में एक स्त्री पक्ष के मर जाने और तुरन्त उसकी जगह दूसरी आ जाने पर उसकी मंथर गति में अंतर नहीं आता, वैसे ही विधवा के पक्ष में एक पति के स्थान पर

दूसरा आ जाने पर उसकी नानी नहीं मर जानी चाहिए।''[43]

'अमृत और विष' में रानी कम उम्र में ही विधवा हो जाती है। जवानी में उसका मन गाँव के मध्यमवर्गीय युवा रमेश की ओर आकर्षित होता है। वह सोचती है कि माँ की मृत्यु के पश्चात् पिताजी दूसरी शादी कर सकते हैं तो वह क्यों नहीं। वह सोचती है: ''पुरुष के लिए यह पाप क्यों नहीं? अम्मा आखिर मुझसे कौन बड़ी है, मैं उससे एक साल ही तो छोटी हूँ।''[44] रिद्धूसिंह की बेटी माया भी विवाह के एक साल बाद विधवा होती है, उसका भी पुनर्विवाह करवाया जाता है।

भैरवप्रसाद गुप्त ने 'गंगा मैया' उपन्यास में मध्यमवर्गीय समाज में विधवा की दारूण परिस्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है: ''जिन्दगी की एक मुर्दा तस्वीर हो या जैसे एक मुर्दा जिन्दा होकर चल–फिर रहा हो।''[45] रामदरश मिश्र का उपन्यास 'पानी के प्राचीर' में गुलाबी विधवा होने के पश्चात् बैजू पण्डित के साथ पुनर्विवाह कर लेती है, लेकिन बैजू का समाज वाले बहिष्कार करते हैं। लेकिन गाँव का प्रगतिशील मध्यमवर्गीय युवा नीरू पंचायत के सामने ही उसको बधाई देते हुए कहता है: ''असहाय अबलाओं को छिपे–छिपे अपनी वासना के होठों से चूसकर फेंक देनेवाले अपने कुकर्मों का पर्दाफास करनेवाले भ्रूणों की हत्याएं करनेवाले हमारे भीतर भरे पड़े हैं, लेकिन साहस के साथ दुनिया की झूठी बदनामी की परवाह किए बिना एक नारी का हाथ पकड़ना और उसकी संतान को अपनी संतान के रूप में स्वीकार करना बहुत बड़े पुरुषार्थ का काम है। बैजू ने आज एक पवित्र काम किया है।''[46]

यशपाल ने 'मनुष्य के रूप' में सोमा विधवा घर–भर का अत्याचार सहन करती है। जब उसे मालूम पड़ता है कि उसके ससुर ढाई–तीनसौ रूपये में उसे पंजाबी के यहाँ बेच देना चाहते हैं, तो उसकी रूह काँप जाती है। आखिर वह धनसिंह के साथ भाग जाती है। विधवा को भी अपनी समस्याओं से उबरने के लिए सहारे की आवश्यकता रहती है।

'मछली मरी हुई' में निर्मल पद्मावत जब दस वर्ष का था तब उसकी माँ विधवा हो जाती है। पति के मरने के बाद वह पैतृक संपत्ति बेचकर एक लॉरीवाले ड्राईवर के साथ भागकर घर बसा लेती है।

नागार्जुन के 'उग्रतारा' उपन्यास में उगनी विधवा की मानसिकता का आलेखन किया गया है। सोमेश्वर के साथ उगनी पुनर्विवाह करना चाहती है, लेकिन समाजवाले दोनों को जेल भेज देते हैं। वहाँ उगनी पुलिस की कामवासना का भोग बनती है, जिससे उसे गर्भ रह जाता है। गर्भवती उगनी को कमलेश्वर फिर भी अपनाता है। उकनी कहती है: ''प्रथम बार आज एक पुरुष ने गर्भिणी नारी के सीमान्त में सिन्दूर

भरा था। धोखे में नहीं, जान–बूझ कर।''[47] इस प्रकार साठोत्तरी उपन्यासकारों ने मध्यमवर्ग से सम्बन्धित उपन्यासों में विधवा पुनर्विवाह के द्वारा समाज की कठोर और दृढ़ परम्पराओं पर प्रहार किया है।

'कितने चौराहे' रेणुजी के उपन्यास में शरबतिया विधवा नारी का पुनर्विवाह किया जाता है। इस प्रकार साठोत्तरी उपन्यासकारों ने विधवा नारी के पुनर्विवाह के द्वारा इस समस्या को सुलझाने कोशिश की है।

यशपाल कृत 'बारह घण्टे' में भी विधवा बिनी और केंटम के बीच भी स्नेह तंतु दिखायी देते हैं। एक–दूसरे की सहानुभूति में खोकर वे जीवन बिताना चाहते हैं। भगवतीप्रसाद कृत 'भूले बिसरे चित्र' की जैदई को ज्वालाप्रसाद हृदय से पति के स्वरूप में स्वीकार है, फिर भी वह पुनर्विवाह नहीं कर सकती।

इस प्रकार साठोत्तरी उपन्यासकारों ने मध्यमवर्गीय समाज में व्याप्त विधवा समस्या को दिखाया है।

दहेज और बेमेल विवाह की समस्याः

मध्यमवर्गीय जीवन में मूल रूप से अर्थ की समस्या निहित होती है, जो अन्य सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है। दहेज, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति, पैसे के लिए देह–विक्रय आदि समस्याएँ विद्यमान रहती हैं। ''निम्न और उच्च वर्ग के लिए यह समस्या उतनी विकराल नहीं है, जितनी मध्यमवर्गीय समाज के लिए है। यह वर्ग शिक्षित होने के कारण चैतन्य और जागरुक होता है। उसकी महत्वाकांक्षाएँ उच्चवर्ग के सदृश होती हैं लेकिन उसके आर्थिक साधन अत्यंत सीमित होते हैं। इस स्थिति में न तो वह उच्च वर्ग से होड़ करने की सामर्थ्य रखता है और न ही अपनी चेतना और अहंभाव के कारण निम्नवर्ग के साथ मिल सकता है। समसामायिक उपन्यासकारों ने वैवाहिक समस्या के सम्बन्ध में मध्यमवर्ग का ही चित्रण किया है। निम्नवर्ग में दहेज आदि का चलन नहीं है। उच्चवर्ग के लिए यह कोई समस्या नहीं है। इसके कारण मध्यमवर्ग ही सबसे अधिक परेशान रहता है।''[48]

'भूले बिसरे चित्र' की विद्या और 'सीधी सच्ची बातें' की यमुना के माध्यम से लेखक ने मध्यमवर्ग की दहेज समस्या को उठाया है। विद्या को दहेज में ज्यादा पैसा न लाने के कारण ससुरालवालों के अत्याचार सहन करने पड़ते हैं. अंत में थककर वह हमेशा के लिए मायके में वापस आ जाती है। ''केशव के पिता अपनी पुत्री के विवाह में उतना ही दहेज देना चाहते हैं जितना उनको केशव के विवाह में मिला था। बाबु बाँकेलाल पाँच हजार का दहेज माँगते थे. रामचन्द्र तीन हजार का देना चाहते थे, क्योंकि उनके लड़के

केशव को तीन हजार का दहेज मिला। मध्यमवर्ग में यह दहेज प्रथा वंश परम्परा के अनुकूल चलती हुई प्रतीत होती है। जो न कभी खत्म होती है और न उसे खत्म करने की ईमानदारी के साथ कोशिश की जाती है।''[49]

आर्थिक समस्या के कारण मध्यमवर्गीय परिवारों की लड़कियाँ या तो अविवाहित रह जाती हैं या फिर दहेज न लाने के कारण ससुराल के कष्ट सहन करने पड़ते हैं।

नये युग की चेतना से युक्त यथार्थवादी दृष्टि से अपनी आर्थिक विपन्न परिस्थिति में रहती हुई 'थके हारे पाँव' की माया विवाह का विरोध करती है। ''अम्मा, मुझे विवाह नहीं करना... विवाह के अर्थ है, स्त्री को नरक में ढकेल देना और इस नरक में आप मुझे नहीं धकेल सकते। मर जाना उस नरक में पड़ने की अपेक्षा ज्यादा पसंद करुँगी।''[50]

'समुद्र में खोया आदमी' उपन्यास में श्यामलाल बाप होते हुए भी आर्थिक संकट की वजह से अपनी बेटी को चालीस रूपये के लिये बेच देता है। हरवंस को माहवार में दे देता है।

साठोत्तरी मध्यमवर्गीय उपन्यासों में आर्थिक तनावों के कारण मध्यमवर्गीय कुटुंब में प्रवर्तमान सतही कुण्ठाओं का वर्णन है। 'कितने चौराहे' में आर्थिख विपन्नता के कारण मोहरिल मामा अपनी बेटी को पाँच सौ रुपये के लिए दो बच्चे के पिता के साथ ब्याह करवाना चाहते हैं। 'लड़के की उम्र जरा ज्यादा है, दो ब्याहा है, तो क्या हुआ? किशनगंज रजिस्ट्री ऑफिस का सिनियर मोहरिल है। अपना मकान है, पहले से दो बच्चे हैं।... शरबतिया की माँ कहती है– ''नहीं–नहीं, दो ब्याह और बच्चोंवाले के साथ मैं हरगिज चुमौना नहीं दूँगी, सरो का चाहे जो हो जाय। (पिताजी) 'पांच सौ नगद देगा।.... मुझे रूपयों की जरुरत है।''[51]

आज समाज चाहे कितना ही शिक्षा के रूप में आगे नकला हो, लेकिन दहेज समस्या को जड़मूल से नाबूद नहीं कर पाया। परंपरागत रुढ़िगत संस्कार और आर्थिक विपन्नता के कारण इस समस्याने विकराल रूप धारण किया है।

'माटी की महक' में सच्चिदानंद 'धूमकेतु' ने शादी–ब्याहों के दलाल किस प्रकार निम्न मध्यमवर्गीय लड़कियों का विवाह प्रौढ़ पुरुष, निकम्मे लड़के या विधुर से कर देते हैं, माँ–बाप भी दहेज समस्या के कारण तंग आकर हाँ कर देते हैं, इसका वर्णन किया है। माधो पंडित लड़की की माँ से कहता है: ''मैंने तो पहले ही साफ़–साफ़ कह दिया जायेगा। उन्हें दहेज की जरुरत भी क्या है। भगवान ने खुद बहुत पैसा दे

रखा है। ... बस सिर्फ हाँ कर दो।''[52]

अनमेल विवाह भी दहेज प्रथा के कारण ही विकसित हुई समस्या है। मध्यमवर्ग दहेज देने में असमर्थ होने की वजह से वह अपनी लड़कियों को किसी के हाथ में भी सौंप देते हैं। 'अलग–अलग वैतरणी' उपन्यास की पुष्पा का आर्थिक अक्षमता के कारण किसी विधुर के साथ विवाह हो जाता है।

नरेश मेहता कृत 'यह पथ बंधु था' उपन्यास में दहेज न लाने के कारण ससुराल में बात–बात पर अपमानित होना पड़ता है। पति द्वारा त्यज दिया जाता है। अपनी माँ की गोद में गुनी रो पड़ती है और कहती है: ''जिज्जी, जीवन में आँसुओं का मूल्य है न भावना का। केवल सहना ही सत्य है, बिना सहे कोई गति नहीं।''[53]

विवेकी राय के उपन्यास 'सोनामाटी' में दिखाया गया है मध्यमवर्ग की शिक्षित पीढ़ी नौकरी न मिलने पर दहेज में मोटी राशि लेकर अपने भविष्य को बनाने के सपने रचाती है। दहेज के कारण रामरूप की अवस्था चक्रव्यूह में फँसे अभिमन्यु जैसी हो जाती है। पुत्री कमली का विवाह उसका सिरदर्द बन जाता है। भुवनेश्वर जैसा विधायक प्रकट रूप में दहेज का विरोध कर अपने विवाह में चुपके से चालीस हजार, नयी जीप और काफी सामान लेता है।

रामदरश मिश्र कृत 'जल टूटता हुआ' उपन्यास में मध्यमवर्ग का प्रतिनिधित्व करता हुआ सुग्गन मास्टर अपनी बेटी गीता की शादी के लिए चिंतित है। इस चिंता का मूल कारण दहेज है। सुग्गन अपनी बेटी के लिए दहेज नहीं जुटा सकता। ''ये है सुकुलपुरी के सुकुलजी.. ये मामखार के सुकुल हैं। बेटा मिडिल स्कूल में कई साल से फेल हो रहा है, दरवाजे पर एक बैल है, दहेज माँगते हैं, डे हजार स्कूल हैं, मामखोर कन। करकरा सुकुल। सुना है लड़के का चाचा पक्का चोर है। कई बार जेल काट आये हैं। किन्तु इससे क्या? सुकुल तो हैं। ''ये हैं मिसरौली के मिसिर जी, दो बैल की खेती है, किन्तु लड़का मैट्रिक पास करके किसी दफ्तर में साठ रुपया पा रहा है। बाप कहता है लड़का साहब है। माँगते हैं दो हजार।''[54]

जयश्री बारहट्टे ने भगवती प्रसाद कृत 'एक आँसू का स्वर' में प्रस्तुत इस समस्या की विवेचना करते हुए लिखा है कि '' 'एक स्वर आँसू का' में गोमती माँ आरती की शादी में दहेज के कारण चिंताक्रान्त है। एक मात्र मकान ही उसके पास है जिसे बेचकर वह आरती की शादी तय कर सकती थी। लेकिन वह मकान बनवाने के लिए जो आपदायें आयी थीं, उन आपदायों को याद कर गोमती माँ परेशान–सी हो जाती है कि यह मकान कैसे बेच दिया जाये? और यह मकान तो आरती के पिताने परिवार के लिए ही तो बनवाया था।

इसी प्रकार बेटी की शादी में दहेज के कारण गोमती परेशान है।''[55]

'कन्दली और कुहासे' में रघुवीर की बहन की शादी में वर दहेज के रूप में स्कूटर माँगता है। दहेज की आवश्यकता के लिए पैसों की सुविधा न होने के कारण 'थके पाँव' का किशन कहता हैः ''अभी माया की शादी की क्या जल्दी है? काम से कम दो साल तो उसकी शादी मत कीजिये। उसे एम.ए. पास कर लेने दीजिए। रुपिया में सात–आठ महीने में भेज दूँगा। अभी तो खुद ही तंगहाल हूँ।''[56]

आखिर में माया का विवाह परिवार की आर्थिक दुर्दशा के कारण विधुर डॉक्टर के साथ तय किया जाता है। अपनी इसी बेबसी को व्यक्त करती हुई माया अपनी अम्मा से कहती है ''अम्मा, मुझे विवाह नहीं करना। देख तो रही हूँ तुम्हारी हालत, भौजी की हालत, बूआ की हालत। विवाह का अर्थ है स्त्री को नरक में ढकल देना और आप मुझे नहीं ढकेल सकते। मर जाना मैं नरक की अपेक्षा ज्यादा पसंद करुंगी।''[57]

इस प्रकार मध्यमवर्गीय समाज में दहेज प्रथा एक दूषण की तरह घर कर गई है। प्रायः परिवार की इच्छा और आशा के आगे लड़कियाँ अपने जीवन को समर्पित कर देती हैं और आर्थिक विषमता के कारण उनका विवाह कुपात्रों से हो जाता है। इस प्रकार साठोत्तरी मध्यमवर्गीय उपन्यासों मे दहेज की क्रूर विभीषिका का चित्रण हुआ है।

संत्रास, अलगाव बोध, निराशा, घूटन और अकेलापनः

मध्यमवर्गीय व्यक्ति के जीवन में आर्थिक विषमता, वैचारिक मतभेद, क्लेष के कारण निराशा, टूटन, अलगाव और विवशता व्याप्त हो गई है।

शिवप्रसाद सिंह 'अलग–अलग वैतरणी' में दिखाया कि सभी अच्छे भले लोग गाँव छोड़कर शहर को जा रहे हैं। इस परिस्थिति को भाँपते हुए जगन मिसिर कहते हैंः ''सांस चली गई।' मध्यवर्गीय मास्टर रशिकान्त स्कूली बच्चों की मुख–मुद्रा देखकर बोलते हैंः उन्हें डाँटो तब भी और हँसाओ तब भी चेहरे में कोई फर्क नहीं पड़ता इसमें अजीब टूटन देखने को मिलती है।

''आधुनिक काल की विसंगतियों मूल्य हीनता, निरर्थक बोध के साथ महानगरीय सभ्यता, औद्योगिकरण और बढ़ती जनसंख्या से मनुष्य के वैयक्तिक रूप पर पड़ते असंगत दबावों ने आज मनुष्य को अजनबी, मिसफिट अकेला और सन्त्रस्त बना दिया।''[58]

मोहन राकेश कृत 'अंधेरे बंद कमरे' में हरबंस और नीलिमा के टूटते हुए जीवन एवम् दोनों की

विवशता का चित्रण स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। ''विवाहीत जीवन में दो व्यक्तियों का शारीरिक सम्बन्ध ही सबकुछ नहीं होता, और मैं जानती हूँ कि मैं उसके लिये एक शारीरिक साधन से ज्यादा कुछ नहीं हूँ। इस आभास के कारण मुझे अपने आप कितना व्यर्थ और खाली–खाली लगता है यह मैं किसी को ठीक से बता ही नहीं सकती। हम लोगों में एक–दूसरे के प्रति जो उत्साह होना चाहिए वह उत्साह भी धीरे–धीरे समाप्त हो गया है। हम लोग पति–पत्नी हैं परंतु पति–पत्नी में जो चीज होती है, हम में कब की समाप्त हो चूकी है।''[59]

इलाचन्द्र जोशी कृत 'ऋतुचक्र' में दादा, चित्रा और प्रतिमा दोनों बदलते आधुनिक मूल्यों से त्रस्त हैं इस वजह से उनके जीवन में निराशा भर जाती है। लेकिन दादाजी उन्हें समझाते हैं कि ''ऐसी स्थिति में नये–पुराने की चिन्ता के चक्कर में न पड़कर निजी संस्कार, सामर्थ्य और विवेक के अनुसार जीते चले जाने में ही भलाई है।''[60]

अज्ञेय के 'अपने–अपने अजनबी' में योके और सेल्मा मृत्यु के संत्रास को नजदीक से अनुभव करती हुई अपने निजत्व को खो देती है। फोटोग्राफर भी भूख से तड़पकर मरना पसंद करता है लेकिन किसी की भी सहानुभूति की आशा नहीं रखती। सेल्मा और यौके दोनों मृत्यु का नजदीक से अनुभव कर रही हैं इसलिए उनकमें संत्रास और डर का भाव मौजूद है।

मूलतः संत्रास मनुष्य की यह आधारभूत अनुभूति है कि मनुष्य उस जगत से संबंधित नहीं है। जिसमें वह है और जगत में व्याकुलावस्था में रहता है। इस अनुभूति से पलायन के लिए तथा इसका परिहार करने के लिए जब मनुष्य प्रयास करता है तो संत्रास उसका पीछा करता है। भय से भिन्न, जिसका कोई निश्चित तथा विशिष्ट कारण होता है, संत्रास किसी वस्तु विशेष को स्त्रोत मानकर उससे उत्पन्न नहीं होता, अतः कोई दिशा ऐसी नहीं होती जिसमें इसको खोजा जा सके। अपितु संसार ही जैसा वह है, वह वस्तु है जिसके संमुख होने पर किसी को व्याकुलता होती है।''[61]

'दो एकान्त' में नरेश महेता ने मध्यमवर्गीय युवा दंपति विवेक और वनीरा के बिखरते जीवन और उनके अलगाव, विवशता का उल्लेख किया है। विवशता अनुभव करती हुई वानीरा कहती है: ''तुम्हारी व्यस्तता और विवशता दोनों ही पूछती हूँ विवेक... अपने पर झल्लाहट भी होती है। तुम लोकप्रिय हो रहे हो। तुम्हारा नाम होता जा रहा है। जब मैं अपने से छिन्न हुआ तुम्हें पाती हूँ, तो एकदम टूट जाती हूँ। विवेक क्या कभी सोच सकते हो कि दिन, हफ़्ता, महीने हो जाते हैं। सवेरे जब जागती हूँ तो उस समय तक तुम सड़क पर जा चुके होते हो।

केवल तुम्हारी पीठ देखते खिड़की में खड़ी रहती हूँ... सोते देखती हूँ तो मन कैसे उदास हो जाता है विवेक। लगता है कि एक अगम्य सिंधु हमारे दो एकान्तों के बीच आ खड़ा हुआ है।''[62]

महेन्द्र भल्ला के उपन्यास 'एक पति के नोट्स' में नायक अपनी पत्नी से निराश और कुंठित है। वह पत्नी सीता के प्रेम से ऊब जाता है। उससे छुटकारा पाने के लिए पड़ौसी सन्ध्या के साथ शारीरिक संबंध बाँधता है लेकिन उसकी समझ में आ जाता है कि इसमें कुछ नवीनता नहीं है और उसे निराशा घेर लेती है। ''गन्दगी और घिनौनेपन के अलावा कुछ भी हाथ नहीं लगता है और वह सोचता है कि लोग इसको कैसे और क्यों झेलते हैं?''[63]

'अलग–अलग वैतरणी' में पटनदिया भाभी और कनिया की विवशता दिखायी गई है। 'पटनदिया भाभी और कनिया दोनों ही सताई हुई स्त्रियाँ हैं, किन्तु दोनों की पीड़ा के आधार और स्वरूप में अन्तर है। एक का पति नपुंसक है और एक का पति लम्पट। एक का पति पत्नी के चाहते हुए भी उसे कुछ दे नहीं सकता और एक का पति देने की सामर्थ्य रखते हुए भी उससे कट गया है। एक विधवा होकर समाज के लांछन का शिकार होती है, एक सधवा रहकर भी पीड़ा के घूँट पीती रहती है।''[64]

रामदरश मिश्र कृत 'जल टूटता हुआ' में भी विविध प्रेम प्रसंग के द्वारा आज की मध्यमवर्गीय नारी की जिन्दगी की घुटन, विवशता और वेदना को बखूबी दर्शाया है। इस उपन्यास में रामदरश मिश्र ने एक जगह लिखा है ''अन्तरर्विरोधों के तनाव की पहचान करते हुए यथार्थ को उसकी समग्रता में लेना ही सही यथार्थवादी दृष्टि के फलस्वरूप यहाँ अन्तर्विरोध भी उभरे हैं और विभिन्न चरित्रों के बीच टकराहट भी महीपसिंह और जगपतिया महीपसिंह और सतीश, दीनदयाल और कुंजु–बिरजु, सतीश और कुमार ब्राह्मण और हरिजन में यथार्थ की सीधी सपाट अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि चरित्रों और स्थितियों के अन्तर्विरोध और तनाव भी सामने आए हैं।''[65]

ममता कालिया कृत 'बेघर' उपन्यास में भी परमजीत संजीवनी को अछूती लड़की के रूप में चाहता है लेकिन शादी के बाद उसे शारीरिक सम्बन्ध बाँधने पर एहसास होता है कि वह पहला नहीं है। कुँवारेपन की उसकी अवधारणा के कारण उसके जीवन में कुण्ठा, निराशा और तनाव से भर जाता है। यहाँ पर संजीवनी के जीवन में भी सम्बन्ध टूटने से निराशा, व्यथा भर जाती है। वह सोचती है: ''अब कभी कोई उसकी जिन्दगी में नहीं आएगा, कोई उसके नजदीक आकर नहीं बैठेगा।''[66]

निर्मल वर्मा कृत 'वे दिन' में मध्यमवर्गीय रायना उसके जीवन के बहुत दिन अपने पति जॉक के

साथ कॉलोन में द्वितीय महायुद्ध के दौरान बीता था। उस समय मृत्यु उनके बहुत नजदीक थी। मृत्युरुपी भय ने उन्हें पहले ही शून्यमनस्क कर दिया था। कैम्प में पति–पत्नी साथ रहकर भी मृत्यु से पहले मर चूके थेः ''नॉट इवन फार लव। पीस फिल्ड इट..।''[67] इन सभी वजहों से रायना तटस्थ और आत्म निर्वासित–सी बन जाती है। युद्ध का संत्रास, युद्ध से मंडराता भय और बात में जॉक से अलग होना यह तीनों वेदना उसमें समाहित है। रायना अपनी वेदना को व्यक्त नहीं कर सकती।

'रुकोगी नहीं राधिका' में मध्यमवर्गीय आधुनिक शिक्षित युवती राधिका भी अजनबियत और अकेलेपन से आक्रान्त है। विदेश में जब वह डैन स अलग होती है तब अकेलेपन की चुनौती स्वीकार कर लेती है। विदेश प्रवास के दौरान भी वह अकेलेपन की भुगतती है। स्वदेश वापस आने पर भी स्वजनों के बीच उसे अलगाव को झेलना पड़ता है। ''उसे लगा कि वह अपने परिवेश का भाग नहीं रही। वह यहाँ रहते भी निर्वासित है। उसका जीवन निरुद्देश्य यात्रा है। एक लम्बी अंधकारपूर्ण सुरंग में।''[68] इसी उपन्यास की आलोचना करते हुए जयश्री बारहट्टे लिखती हैं: ''रुकोगी नहीं राधिका' में वैयक्तिक स्वतंत्रता के आग्रह से असहनीय व्यथा एवं निराशा और अवसाद के क्षण दृष्टिगोचर होते हैं। राधिका सोचती है कि जब पापा ने अपने जीवन की राह चुन ली, तो वह क्यों नहीं स्वतंत्र हो अपने जीवन की राह चुन लेती? इससे उन्हें असहनीय व्यथा, कुण्ठा एवं निराशा ही प्राप्त होती है और वैयक्तिक स्वातंत्र्य के नाम पर वे जीवन पर्यन्त छटपटाते रहते हैं, उलझ नहीं सकते।''[69]

मन्नू भंडारी कृत 'आपका बंटी' में भी मध्यमवर्गीय पति–पत्नी और बेटे के अलगाव को दिखाया गया है। बंटी के माता–पिता के बीच तलाक हो जाता है। वह माता–पिता के बीच में पिसता है। इस वजह से बंटी में अकेलेपन का बोध होता है। बंटी के माता–पिता दोनों दूसरी बार शादी कर लेते हैं। बंटी का मम्मी से अलगाव होते ही वह सोचता है ''उसकी मम्मी अब उसकी नहीं रही, कोई और ही हो गई।''[70] इसी प्रकार पापा से अलगाव होते ही वह सोचता है: ''क्या मम्मी को पापा की याद नहीं आती होगी?''[71]

श्रीकांत वर्मा कृत 'दूसरी बार' का नायक भी अपनी पत्नी के साथ पहली बार संभोग सुख लेता है तो तुरंत स्खलित होता है। इस तरह वह हीनता ग्रंथि से पीड़ित है। इसीलिए 'वह झक्की और तुनक मिजाज हो जाता है, वह अपने को निरन्तर अपमान और उपेक्षा की पीड़ा से ग्रस्त पाता है। इसीलिए वह निरन्तर तनावग्रस्त रहता है। तनाव की छटपटाहट में जब उसका मोहभंग होता है तो वह किसी सैद्धांतिक अनुभूति से निकला हुआ न होकर विवशता की स्थिति को जन्म देता है।''[72] वह विन्दो से छुटकारा पाना चाहता

है, लेकिन अपने को विवश पाता है। इस प्रकार निराशा भर जाने पर वह आत्मनिर्वासित जान पड़ता है।

मोहन राकेश कृत 'न आनेवाला कल' उपन्यास में मध्यमवर्गीय पति–पत्नी के जीवन में संत्रास और विवशता का भूत रहा है। पति के मरने के बाद शोभा मनोज से विवाह करती है लेकिन वह तीसरा, मृत पति हमेशा दोनों के बीच अदृश्य पुरुष की तरह व्याप्त रहता है। इनके बीच के संत्रास का यही कारण है। मनोज शोभा के साथ रहते हुए हमेशा महसूस करता है कि वह किसी और की पत्नी के साथ रहता है। वह विवश होकर इस जिम्मेदारी को ढो रहा है। ''उसकी नजर में अब भी वह एक अकेला आदमी था जिसका घर उसे संभालना पड़ रहा था जबकि मेरे लिए वह किसी दूसरे की पत्नी थी जिसके घर में मैं एक बेतुके मेहमान की तरह टिका था।''[73]

नायक की तरह नायिका अर्थात् शोभा भी अलगाव बोध और संत्रास को झेल रही है। मनोज की प्रसन्नता के लिए वह किसी की पूर्व पत्नी रह चुकी है यह आभास कभी नहीं आने देना चाहती। इसलिए वह अपने एहसास को मारती है। खुद मनोज इसकी व्यथा को भावों को महसूस करता है। ''बातचीत के दौरान मेरे मुँह से कभी उसके पहले पति का नाम निकल जाता तो उसे लगता जैसे जान–बूझकर उसे छीलने को कोशिश की गई है।''[74] संत्रास की यह स्थिति उपन्यास के अन्य पात्रों बानी, कासनी, हिसलर, मिसेज लारा आदि सब में भी पायी जाती है।

स्कूल के वातावरण में भी अनुशासन के कारण बुधवानी और बानी के संवाद में भी संत्रास स्पष्ट दिखायी देता है : ''तुम्हारी जगह और आदमी होता तो वे उसे बुलाकर हरगिज बात न करते। चुपचाप उस कागज पर दस्तखत करके मुझसे उसका हिसाब करने को कह देते।''[75]

मध्यमवर्गीय समाज में आज पति–पत्नी के बीच संत्रास इतना गहरा है कि दोनों एक साथ एक कमरे में एक छत के नीचे एक बिस्तर पर रहकर भी अजनबी की तरह बर्ताव करते हैं। ''और उस आशा और तनाव की स्थिति ही में ही दोनों सो जाते थे। वह बायें बिस्तर पर बायीं करवट, मैं दायें बिस्तर पर दायीं करवट। कभी गलत करवट में एक का हाथ दूसरे से छू जाता तो एक शब्द से उसकी गलतफहमी दूर कर दी जाती 'सॉरी'।''[76]

'साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासःबदलता व्यक्ति' में ममता ने 'मछली मरी हुई' उपन्यास की आलोचना करते हुए लिखा हैः ''उपन्यास में सेक्स का यह क्रिया व्यापार बार–बार चलता है। इस प्रकार विघटन, विसंगति, संत्रास, यांत्रिक तटस्थता, अजनबीपन और एकाकीपन का बोध व्यक्ति के बदलते आयाम द्वारा

उद्‌घाटित होते हैं, जिसके मूल में नगरबोध की वह आधुनिकता है, जिसमें आज का व्यक्ति उखड़ा हुआ, उद्देश्यहीन, निःसार, अजातीयता और अजनबीपन से भरा हुआ है।''[77]

शरद देवडा कृत 'टूटती इकाइयाँ' में भी उपन्यास के अन्तिम अंश में पति–पत्नी में दूरी बढती जा रही है। वे दोनों एक–दूसरे से अजनबी होते जा रहे हैं। 'अकेलेपन, अजनबियत, अपरिचय बोध, टूटती मान्यता तथा मृत्यु–बोध का जो एक रूप उभरता है।''[78]

मोहन राकेश कृत 'अंधेरे बंद कमरे' में एक प्रसंग से नीलिमा के मन की क्षुब्धता, विवशता देखने को मिलती है : ''मगर पहले तो तुमने मुझे झूठे विश्वास देकर बुला दिया और अब मुझसे बेबी सिटिंग कराते हो और खुद खिड़की के पास बैठे आसमान घूरते रहते हो। मैं ऐसी जिन्दगी बरदाश्त नहीं कर सकती।''[79]

इस प्रकार मध्यमवर्गीय व्यक्ति के जीवन में प्रवर्तमान संत्रास, कुण्ठा, टूटन, घुटन, अलगावबोध, विवशता की यथार्थ ट्रेजड़ी को प्रस्तुत किया है।

नारी मुक्तिः

साठोत्तरी मध्यमवर्ग से सम्बन्धित उपन्यासों में नारी के व्यक्तित्व और जीवन का वर्णन किया है। इन उपन्यासों में मध्यमवर्गीय नारी की विविध समस्याओं को चित्रित किया गया है। नारी मुक्ति सम्बन्धित उन नैतिक मूल्यों का विरोध मिलता है जो समाज के विकास में बाधक सिद्ध होता है। इन उपन्यासों में सदियों से गृहिणी रूप में दासी बनकर जी रही नारी की समस्या को उद्‌घाटित किया गया है। इसमें नारी स्वतंत्रता, समानता एवं आत्म–निर्भरता की बात को उठाया गया है। डॉ. मंजुला सिंह ने लिखा है: ''पति–पत्नी में शासक और शासित, मालिक और गुलाम के सम्बन्ध मिटाने के लिए यह आवश्यक है कि नारी भी पुरुष की भाँति अपने सार्वजनिक व्यक्तित्व का निर्माण करे।''[80]

'मध्यमवर्ग समाज में पुरुष हर प्रकार से अपनी स्थिति को स्वतंत्र रखना चाहते हैं और स्त्री के लिए उसका निषेध करते हैं।''[81] आज शिक्षा के व्यापक प्रचार के कारण नारी स्वावलम्बी एवं अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए प्रयत्नशील है।

नारी पुरुष की भोग्या अथवा समर्पिता नहीं रहना चाहती, आर्थिक क्षेत्र में स्वावलम्बी बनकर वह पुरुष से मुक्त होना चाहती है। समाज में स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व के आग्रह के कारण रुढ़िवादिता में बौखलाहट उत्पन्न हुई। इनके द्वारा आज की शिक्षित नारी दृढ़ आत्मविश्वास और स्वाभिमान के साथ पुरुष

के साथ कंधे से कंधा मिलाने में सक्षम है। सुशिक्षित नारी परंपरागत रुढ़िचुस्त मान्यताओं का विरोध करती हुई भी दिखाई है। ''सामाजिक जागरण, नारी आंदोलन, शिक्षा, पाश्चात्य प्रभाव एवं स्वाधीनता की भावना के परिणामस्वरूप नारी संबंधी परम्परागत मूल्यों में परिवर्तन आया। इस क्षेत्र में स्वयं स्त्री ने ही अग्रणी होकर दकियानूसी मूल्यों से जमकर संघर्ष किया है।''[82]

नारी के प्रति अगर परंपरागत मूल्यों पर नजर करें तो देख सकते हैं कि समाज के द्वारा उनको बहुत ही पीड़ा, अत्याचार और अपमान का भोग बनना पड़ा था। ''औरत की हालत सभी जगह एक–सी है चाहे वह राजकुमारी हो या नौकरानी, वह हमेशा पुरुष के तेवर देखकर चलती है, उसकी इ़ज्जत उसके चाहने न चाहने पर है। उसकी प्रतिष्ठा उसीक शरीर शुद्धता परंपरागत मान्यता पर है।''[83]

''मध्यमवर्ग के पुरुष की स्त्री के प्रति केवल भोग की धारणा रही। वह मानता है, स्त्री रात की संगिनी है, शय्या का अलंकार, बिस्तर की जगमगाहट। स्त्री के पास पुरुष क्रीड़ा के लिए आता है, स्त्री की दूसरी कोई उपयोगिता नहीं है।''[84]

'मछली मरी हुई' उपन्यास में नारी की स्थिति का वर्णन करते हुए एक जगह लिखा हैः ''यहाँ सबसे कमजोर हैं स्त्रियाँ जो .. वेश्या अथवा मध्यकुलीन पत्नियाँ होकर एक जैसी जिन्दगी बिताती हैं। गर्भवती होने और फिर से गर्भवती होने और फिर से गर्भवती होने की जिन्दगी।''[85] इसी प्रकार रामदरश मिश्र कृत 'जल टूटता हुआ' में भी नारी की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है। ''पुरुष इनके तन को भोगेंगे और भोगने के बाद लात मारकर ठेल देंगे।''[86] ''स्त्री परंपरागत दृष्टि में पांव तले की जूती''[87] मानी गई है। उसने ''पुरुष की दुनिया में लातें–मुक्का, बदनामी, भूख, घृणा के अलावा क्या पाया?''[88]

नारी की दयनीय अवस्था का बहुत कुछ उत्तरदायित्व पुरुष पर है। 'डूबते मस्तूल' की रंजना पुरुष के प्रति आक्रोश व्यक्त करती हुई कहती हैः ''नारी बिना तुम्हारी सहायता के घर से बाहर निकल नहीं सकती। तुमने 'देवी देवी' कहकर किसी काम के योग्य नहीं रखा।''[89] 'टूटा टी–सेट' की नीलकमल यह अनुभव करती है कि ''हमारी बहुत सी पुरानी आस्थाओं ने ही हमारे नवल विकास के पथ को कन्टकाकीर्ण बनाया है।''[90]

नारी मुक्ति के लिए सबसे पहली आवश्यकता आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति है। आज मध्यमवर्गीय नारियाँ शिक्षा प्राप्त कर आर्थिक रूप से निर्भर होती जा रही है। इस क्षेत्र में प्रयत्नशील विविध नारियों विविध उपन्यासों में दृष्टिगोचर होती हैं। ''सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पुनर्जागरण के इस

काल में नारियाँ कहीं भी कोने में पड़ी रहनेवाली मैले कपड़ों की गठरी नहीं सिद्ध हुई और प्रत्येक क्षेत्र में उनका स्पष्ट योगदान सामने आया। इसलिये मानव मूल्यों को नई अर्थवत्ता प्राप्त हुई और दोनों वर्गों के बीच समानता की भावना सर्वथा नये परिवेश में उपस्थित हुई।''[91]

'भूले बिसरे चित्र' की विद्या, 'झूठा सच' की तारा, 'चौदह फेरे' की कल्याणी, 'ऋतुचक्र' की प्रतिमा, 'रुकोगी नहीं राधिका' की राधिका, 'मित्रो मरजानी' की मित्रो, 'छोटी चम्पा बड़ी चम्पा' की छोटी चम्पा, 'एक स्वर आँसू का' की आरती आदि सामाजिक कठोर परम्परा के विरोधी हैं।

मोहन राकेश कृत 'अंधेरे बंद कमरे' में नारी मुक्ति की भावना को बल मिला है। सुषमा का कथन है ''मैंने आज तक अपने को किसी पुरुष के सामने हीन नहीं होने दिया, किसी को अपनी कमजोरी का फायदा नहीं उठाने दिया... मैं आर्थिक रूप से किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहती। पुरुषों में स्त्रियों के प्रति जो संरक्षणात्मक भाव है, वह मुझे बरदास्त नहीं था, इसीलिए मैंने ऐसा काम चुना जिसमें मैं अपने आपको किसी पुरुष के बराबर सिद्ध कर सकूँ।''[92]

उषा प्रियंवदा के उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' में राधिका का उन्मुक्त व्यक्तित्व झलकता है। पिता की दूसरी शादी से वह आहत होती हुई स्वच्छंद जीवन शैली अपनाती है। इसलिए शायद उसके जीवन में तीन पुरुषों से संपर्क रहा। हरेक के साथ वह अपने विचारों से जिन्दगी बिताना चाहती थी।

अमृतराय के 'हाथी के दाँत' में मध्यमवर्गीय परिवार की आर्थिक विषमता के कारण महत्वाकांक्षी बनी हुई चम्पा और चन्द्रिका के जीवन का चित्रण है। चम्पा अपने पति की आय से संतुष्ट नहीं है। महत्वाकांक्षाओं की अपूर्ति की वजह से वह परिवार के कला का कारण भी बनती है। वह अपना आक्रोश व्यक्त करती हुई सोचती है: ''यह भी कोई जिन्दगी है। अपने... अपने भाग्य की बात है, नहीं, मैं क्या किसीसे रूप में कम हूँ। पर कहाँ का रूप और कहाँ का रंग।''[93] आर्थिक तौर से सब होने के लिए वह ठाकुर साहब के साथ शरीर का सौदा करती है।

साठोत्तरी मध्यमवर्गीय उपन्यासों में उपन्यासकार ने नारी पात्रों को सुशिक्षित दिखाकर आर्थिक रूप से निर्भर दिखाया है। नारी मुक्ति के लिए नारी शिक्षा बहुत ही अनिवार्य है। निम्नलिखित उपन्यासों में मध्यमवर्ग से संबंधित नायिका की शिक्षा के बारे में है।

'अलग-अलग वैतरणी' में पटहनिया भाभी कक्षा नौ तक पढ़ती है। भाई-भाभी के अच्छे व्यवहार के कारण उसे किसी आर्थिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। लेकिन विवाह के पश्चात् उसकी पढ़ाई

छूट जाती है। अपनी पढ़ाई के कारण वह गृहकार्य में कुशल रहती है। पति प्रेम से वंचित होकर भी वह घरकाम करते हुए व्यतीत होता है। बीच में वह इन्टरेंस की परीक्षा देना चाहती है, लेकिन नहीं दे पाती। 'राग–दरबारी' की बेला ने भी थोड़ी बहुत शिक्षा प्राप्ति की है।

गोविन्द मिश्र कृत 'लाल पीली ज़मीन' की शैलजा भी दसवीं कक्षा तक पढ़ी–लिखी है। पिता के अध्यापक होने के कारण शिक्षा प्राप्त करने में किसी भी प्रकार की समस्या का सामना नहीं करना पडता। अपने मुक्त विचारों के कारण वह 'कल्लू' से जबरदस्ती विवाह करती है। इसी उपन्यास की शान्ति मिडिल पास करके प्राईमरी स्कूल में शिक्षिका का काम करती है। मुख्यतः घर की जिम्मेदारी पिता या भाई ही उठाते हैं, लेकिन उनके घर में दोनों में से कई भी नहीं है। अतः माँ की देख–रेख वही करती है।

'छोटे–छोटे सवाल' की उच्च मध्यमवर्ग से सम्बन्धित विमला भी सुशिक्षित है। उसके लिए उसे साधन और साध्य दोनों उपलब्ध है। सत्यव्रत से वह ट्यूशन भी करती है।

राही मासूम रज़ा कृत 'टोपी शुक्ला' में सकीना को भी शिक्षित बताया गया है। सलीमा पीएच.डी. तक पढ़ी लिखी है। 'गली आगे मुड़ती है' उपन्यास में भी किरण और जयंती दोनों एम.ए. तक शिक्षित हैं और पक्षधर की की मिस बर्टी भी शिक्षित है। अन्ततः गुरिल्ला सेना की उसे सदस्य भी दिखाया गया है। 'पत्थरों का शहर' में इति पीएच.डी. तक पढ़ी लिखी है और बाद में पति से तलाक ले कर नौकरी भी करती है। यशपाल कृत 'तेरी मेरी उसकी बात' की नायिका उषा भी एम.ए. तक पढ़ी लिखी है। उसकी शिक्षा भी बिना कठिनाई के पूर्ण हुई है। 'अनदेख अनजाने पुल' की निन्नी भी एम.ए. तक पढ़ी है और नौकरी भी करती है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की उषा भी एम.ए. तक शिक्षा ग्रहण कर अध्यापन का कार्य करती है।

'कसप' उपन्यास की मैत्रेयी भी अपनी पीएच.डी. तक की शिक्षा ग्रहण कर उसका सदुपयोग करती है। 'अंधेरे बन्द कमरे' की नीलिमा, शुकला और सुषमा तीनों शिक्षित हैं। 'सूरजमुखी अंधेरे के' उपन्यास की गीता पाल भी शिक्षित है और अध्यापिका का कार्य करती है। 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा एम.ए. तक पढ़ लिखकर अध्यापन कार्य करती है। 'यह पथबन्धु था' की रत्ना इण्टर पढ़कर अध्यापिका का कार्य करती है।

नारी शिक्षा की वजह से उनमें जागृकता आयी है। आज की नारी अपने आत्म सम्मान के लिए अपने पति से और इस समाज से भी लड़ सकती है। आज नारी अपने को पति के पैरों की जूती नहीं मानती। नारी सम्बन्धित प्राचीन कर्मठ मान्यताओं को वह अब ठोकर मारकर गरिमायुक्त जीवन बीताना चाहती है।

पुरुष द्वारा किये गये अन्याय, अत्याचारों का मुँहतोड़ जवाब देना चाहती है।

लक्ष्मीनारायण कृत 'छोटी चम्पा बड़ी चम्पा' में लेखक ने छोटी चम्पा के द्वारा नारी के आक्रोश को वाणी प्रदान की है। वह कहती हैः ''मर्द जात औरत के शरीर की इज्जत कभी नहीं करता, उसकी यह आदत ही नहीं रह गयी। वह यह कतई भूल गया है कि इसके भीतर भी कुछ है।''[94]

'एक स्वर आँसू का' में आरती के विचार भी सामाजिक परंपरा के विरुद्ध हैं। उसका मानना है कि विवाह तय होने के पहले प्रत्येक लड़की को वर देखने की छूट मिलनी चाहिए। उसके साथ पूरी जिन्दगी निकालनी है, उसके चुनाव में कन्या को भी छूट मिलनी चाहिए।

'रुकोगी नहीं राधिका' की राधिका का निरुपण उन्मुक्त स्त्री के रूप में हुआ है। अपने जीवन जीने की शैली में वह किसी का हस्तक्षेप पसंद नहीं करती। विवाह सम्बन्धी अपने विचार प्रकट करती हुई वह कहती हैः ''मैं ऐसा संगी चाहती हूँ जिसमें स्थिरता हो, औदार्य हो, जो मुझे मेरे सारे अवगुणों सहित स्वीकार कर ले, मेरे अतीत को झेल ले।''[95]

'नदी फिर बह चली' में परबतिया गाँव की विषम परिस्थिति को देखकर राजनीति में सक्रिय भाग लेती है। 'चिड़ियाघर' की मिसेस रिजवी घर की चारदिवारी में बंद नहीं रहना चाहती। वह पत्नीत्व को निभाकर भी कार्यशील बना रहना चाहती है।

मोहन राकेश कृत 'न आने वाला कल' की मध्यमवर्गीय शारदा अपने पति द्वारा दिये गये शारीरिक त्रास का विरोध करती हुई कहती है ''आजकल कोई जमाना है मार खाने का? हम आजकल की औरते हैं, इस जमाने की नहीं... आजकल तो औरत भी चाहे तो दूसरी शादी कर सकती है। सरकार ने इसके लिए कानून ऐसे ही नहीं बनाया।''[96]

'कन्दली और कुहासे' में विल्स कॉलेज की मिस तनुजा भी नारी के बारे में लेक्चर देकर नारी की सुधारित रूप की आग्रही है। लक्ष्मीकान्त वर्मा के उपन्यास 'एक कटी हुयी जिन्दगी, एक फटा हुआ कागज' की दीप्ति भी अपने पति 'केवल' के साथ सादृश्य नहीं देखती। उसका 'केवल' के साथ भावनात्मक संबंध स्थापित नहीं है। 'केवल' के लिए वह मात्र वासनापूर्ति का साधन ही है। इस वजह से वह इस सम्बन्ध को बनाये रखना उचित नहीं समझती। वह परम्परागत वैवाहिक सम्बन्धों के दलदल में फँसना नहीं चाहती। नियमों में बंधना उसे मूर्खता लगती है। आज की सुशिक्षित नारी आर्थिक निर्भरता से बेबस होकर पति का सहारा ढूँढना उचित नहीं समझती।

अन्त में हम देख सकते हैं कि साठोत्तरी मध्यमवर्गीय उपन्यासों में उपन्यासकारों ने मध्यमवर्ग से सम्बन्ध रखनेवाली स्त्रीपात्रों को सुशिक्षित, आर्थिक रूप से निर्भर दिखाकर नारी मुक्ति की समस्या को बल दिया है।

प्रेम और यौन समस्याः

प्रेम या काम मनुष्य जीवन की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मनुष्य को जीने के लिए अन्न पानी की होती है। ''आत्मा से संयुक्त मन से अधिष्ठित पाँच ज्ञानेन्द्रियों की अपने–अपने विषयों में जो अनुकूल प्रवृत्ति है, वही काम है।''[97]

प्रेम और यौन वर्तमान मध्यमवर्गीय समाज की प्रधान समस्या है, जिससे व्यक्ति अपने को इस स्तर तक गिराता है कि वह किसी के सामने नजर तक मिलाने में संकोच का अनुभव करता है। अपने परिवारों को आंतरिक रूप से तोड़ देता है। ''पारस्परिक रूप में स्त्री–पुरुष के प्रेम और काम को अभिन्न माना गया है। परन्तु नई नैतिकता ने उसे पृथक्–पृथक् माना है। यौन भावना शरीर की एक प्राकृतिक आवश्यकता या प्राकृतिक भूख है जिसकी तृप्ति किसी भी स्थिति में होनी ही चाहिए।''[98]

प्रेम और यौन सम्बन्ध को पौराणिक विचारों में अवैध माना जाता था। लेकिन आज के आधुनिक युग में उसे वैध माना जाता है। डॉ. रामदरश मिश्र के अनुसार ''मनुष्य मूलतः वह नहीं है जो ऊपर–ऊपर सतह पर दिखता है। वह भी चेतन की उपज नहीं है।''[99] प्रेम और यौन सम्बन्धित विवेचना' करते हुए डॉ. रमणभाई पटेल ने लिखा हैः ''वर्तमान युग में विवाह पूर्व प्रेम और यौन सम्बन्ध एक समस्या है। यह भी एक समस्या है कि युवक, युवतियों को किसी सीमा तक इस क्षेत्र में छूट मिलनी चाहिए। स्त्री शिक्षा एवं स्त्री स्वातंत्र्य की भावना ने इस क्षेत्र में स्वतंत्रता प्रदान की है। पश्चात् पीढ़ी में प्रभावित युवा वर्ग यौन जीवन को वैवाहिक जीवन से स्वतंत्र मानता है। विवाह पूर्व 'डेटिंग' का प्रयोग आज भारतीय उच्च वर्ग में स्वीकार्य है। इसके अतिरिक्त शिक्षा जगत में एक मत प्रवर्तमान है कि विद्यार्थियों को यौन शिक्षा दी जाए।''[100]

साठोत्तरी मध्यमवर्ग से सम्बन्धित उपन्यासों में भी मध्यमवर्गीय समाज में फैले हुए यौन और प्रेम सम्बन्धित समस्याओं का निरूपण किया गया है। मध्यमवर्गीय युवा वर्ग आज मुक्त संभोग नहीं मुक्त सम्बन्धों की छूट चाहता है। युवक–युवतियाँ स्वच्छंदतापूर्वक मिलना चाहते हैं। विवाह पूर्व यौन–संबंध को अब वे अनैतिक नहीं मानते। सेक्स को अब चारित्र चाल–चलन, संस्कारों से पृथक् माना गया है। यौन भावना का

वर्णन पहले उपन्यासों में वर्णित यौन भावना का वर्णन सहज रूप से मिलता है।

श्रीधर कृत 'दायरे' उपन्यास में सत्यदेव कहता है: ''सेक्स के कारण ही हम एक–दूसरे के नहीं हो जाते। सेक्स हमारी जिन्दगी की धुरी नहीं बन जाता। हम जीवन में धर्म, अर्थ और मोक्ष को भी स्थापित करते हैं।''[101]

'नदी यशस्वी है' में उदयन और कावेरी की शारीरिक लिप्सा देख सकते हैं। कावेरी उदयन से कहती है: ''छोटे सरकार! आपने एक दिन जानना चाहा था कि स्त्री क्या होती है? और कावेरी आशय सी मुझ पर झुक गई। उसने मुझे बाहुओं में भर लिया.... वह मेरे होठों को वैसे ही पीती रही जैसे बैल जल पर अपनी थूंथ रख देते हैं और जल पीने लगते हैं।''[102]

'झूठा सच' की मर्सी की यह मान्यता है विवाह न हो तो भी सेक्स सब चाहते हैं। यह तो शरीर का स्वभाव है। ''जिसे विवाह का मौका नहीं वह क्या करे?''[103]

'शह और मात' में आधुनिक सुजाता के मन में यह विचार भी आता है कि ''नित्य नये पुरुष के सम्पर्क में आने में ऐसा ही अंतर और 'थ्रिल' है जैसे कि नित्य संगीत की नई–नई ट्यूनें सुनने में।''[104]

ऋतुचक्र के दादा का मानना है कि स्त्री–पुरुष के बीच का शारीरिक सम्बन्ध या उनके मत से 'सेक्स' वह मनुष्य जीवन की कठोर वास्तविकता है। इस मान्यतावश वह पैंतालीस वर्षीय प्रतिभा के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं। दोनों अविवाहित हैं। जब दादा से प्रतिभा को अवैध गर्भ रह जाता है तब उनका मानना है कि धोखे से फुसलाकर किया जानेवाला यौन संपर्क और उससे रहे अवैध गर्भपात कराना ही चाहिए।

गिरिराज किशोर कृत 'चिड़ियाघर' की मिसेस रिज़वी उच्छृंखल और उन्मुक्त जीवन व्यतीत करना चाहती है और अशिक्षित पति 'लतीक मियाँ' को अपनी इच्छानुसार नचाती है। वह आधुनिक शिक्षित युवती होकर अपने विचारों के अनुसार स्त्री पुरुष के बीच के अनैतिक–नैतिक के भय को मिटा देना चाहती है।

'सामर्थ्य और सीमा' की विधवा रानी मानकुमारी का भी वृद्ध मेजर नाहरसिंह एवं देवलंकर इंजीनीयर से सम्पर्क रहता है। नशे में बदवास मेजर रानी के स्निग्ध स्पर्श से कहते हैं: ''रानी बहू! तुम स्त्री नहीं देवी हो, कितनी दया, कितनी ममता बटोर लाई हो, तुम अपने में।''[105]

'नदी के द्वीप' की रेखा का विवाह हेमेन्द्र से होने के पश्चात् भी वह भुवन से अपना शारीरिक सम्बन्ध बनाये रखती है। उसमें उसे कुछ भी अनैतिक नहीं लगता। समाज द्वारा इस आरोपित बन्धन को वर्जना

मानती हुई इस सम्बन्ध का नवीनीकरण करती हुई भुवन को लिखती है: ''मैं इतना ही सोच पाती हूँ कि मेरे लिये यह समूचा श्रीमतित्व मिथ्या है कि मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी। तुम्हारी ही हूँ और किसी की कभी नहीं , न कभी हो सकूँगी।''[106]

'क्यों फसे' में अतृप्त जवान भाभी युवक भास्कर से यौन सम्बन्ध स्थापित करती है। ''भाभी मुस्कुरा कर उसके शरीर को सहलाने लगी। संकोच और अनुचित की झिझक के बावजूद भास्कर का रक्त उफन कर शरीर तन गया। भाभी और मुस्कुराई। झुककर उसका मुख चूम लिया। सलाइयाँ पलंग के नीचे डाल दीं और उसके साथ लिहाफ में हो गई। उत्तेजना के आवेश में अनाड़ी जवान से खेलने लगी – पागल, कोई लड़की नहीं मिली।''

रेणु के 'कितने चौराहे' की शरबतिया भी यौन समस्या से पीड़ित है। राजेन्द्र यादव के उपन्यास 'अनदेखे अनजाने पुल' की निम्मी भी दर्शन के केवल स्पर्श से ही उत्तेजित हो जाती है।

इस प्रकार साठोत्तरी मध्यमवर्गीय उपन्यासों में यौन और प्रेम सम्बन्धी समस्या तो स्पष्ट होती ही है साथ–साथ यह भी स्पष्ट होता जा रहा है कि यौन सम्बन्ध को अब अनैतिक नहीं, बल्कि युवावर्ग नैतिक मान रहे हैं।

तलाक समस्याः

मध्यमवर्गीय समाज में आज पाश्चात्य प्रभाव और आधुनिक विचारों, आधुनिक शिक्षा की वजह से स्त्री और पुरुष दोनों ही एक दूसरे से बढ़–चढ़कर रहना चाहते हैं। वह अपने उन्नति के मार्ग में अपनी महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने के लिए किसी का भी हस्तक्षेप पसंद नहीं करते। अपने वैवाहिक जीवन में भी अपना आत्मसम्मान और गरिमा को बनाये रखना चाहते हैं। समाज के द्वारा बनाये गये पति–पत्नी की परंपरागत रुढ़िगत मान्यताओं का विरोध आज के मध्यमवर्गीय युवा करते हैं। वैवाहिक जीवन में भी स्त्री पति के अत्याचार को सहन न करते हुए आज तलाक को मान्य रखती हुई नया जीवन बिताने के लिए तैयार है। ''दाम्पत्य जीवन के मन–मुटाव, संघर्ष अथवा घुटन से मुक्ति पाने के लिए तलाक को मान्यता मिली है। तलाक से अभिप्राय बिगड़ते वैवाहिक सम्बन्धों को कानूनी दृष्टि से विच्छेद कर देना है। परम्परागत वैवाहिक सम्बन्धों में परिवर्तन आया तो तलाक की भी आवश्यकता का अनुभव किया गया। व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना के कारण अब यह आवश्यक नहीं रहा कि स्त्री–पुरुष के बीच सम्बन्ध बिगड़ जाने पर भी उनका घुटनभरा

वैवाहिक जीवन चलता रहे। आज पाश्चात्य जगत में तलाक का प्रयोग बढ़ रहा है। तलाक की स्थिति अधिकांशतः प्रेम–विवाहों में आई है। अर्थात् जिन्हों ने साहस करके प्रेम विवाह किया उन्होंने उसे तोड़ने का भी अधिकार सुरक्षित माना है। परम्परागत विवाहों में तलाक बहुत कम हुआ है, क्योंकि विवाह की परंपरागत धारणा में विच्छेद के लिए स्थान नहीं है। अतः तलाक की संख्या कम ही है।''[107]

साठोत्तरी मध्यमवर्गीय समाज में तलाक के दुष्परिणाम चित्रित किये गये हैं। तलाक के दुष्परिणाम का बच्चों पर पहला प्रभाव पड़ता है। उसका विवरण भी मिलता है।

आज के सुशिक्षित मध्यमवर्गीय युवा पात्र तनाव भरे वैवाहिक जीवन से छुटकारा पाना चाहते हैं। मनू भंडारी कृत 'आपका बंटी' में मध्यमवर्गीय पति–पत्नी के तलाक एवम् उसके कारण बच्चे के मानसिक द्वंद्व का अच्छा निरुपण हुआ है। बंटी के माता–पिता तलाक के पश्चात् दोनों ही पुनर्विवाह कर लेते हैं। वस्तुतः मम्मी के पुनर्विवाह के बाद बण्टी ने विशेषकर महसूस किया कि वह अधिकार वंचित कर दिया गया है। इस वजह से धीरे–धीरे बण्टी के मन में विद्रोह की ज्वाला भड़कने लगी। शकुन का पहला विवाह अजय से होता है और दोनों के मध्य यह संबंध उनकी अपनी इच्छा से ही हुआ था परंतु दोनों का प्रचण्ड अहम् आपस में समझौता कराने में असमर्थ रहता है। शकुन एवं अजय अधिक समय तक साथ नहीं रह सके क्योंकि दोनों ही एक दूसरे की हर बात, हर व्यवहार और हर अदा को एक नया दाँव समझने को मजबूर थे और इस मजबूरी ने दोनों के बीच की दूरी को इतना बढ़ाया कि फिर बण्टी भी उस खाई कोई पाटने के लिए सेतु नहीं बन सका। वकील चाचा ने दोनों को कई बार समझाया कि आपस में समझौता करना पड़ेगा। जब वकील चाचा के सभी हथियार चुक गये तब उन्होंने कहा, ''यदि ऐसा ही है तो फिर अच्छा है कि तुम लोग अलग हो जाओ। संबंध को निभाने की खातिर अपने को खत्म कर देने से अच्छा कि सम्बन्ध को खत्म कर दो।''[108] इस प्रकार शकुन और अजय का तलाक हो जाता है।

राजकमल चौधरी कृत 'मछली मरी हुई' का विश्वजीत महेता अपनी पत्नी को इसलिए तलाक देता है कि अब उसमें यौवन का आकर्षण नहीं रहा। 'एक इंच मुस्कान' में पति–पत्नी के बदलते सम्बन्धों का यथार्थ चित्रण किया गया है। रंजना अमर को पसंद करती है अतः दोनों विवाह के बंधन में बंध जाते हैं. परन्तु जब अमर का झुकाव अमला की तरफ जाता है तो वह पति की बेईमानी नहीं सह पाती। वह पति से सम्बन्ध तोड़कर दूसरे शहर में चली जाती है और वहाँ नौकरी कर आर्थिक रूप से निर्भर हो जाती है। रंजना संस्कारी स्त्री है। वह पति का अन्य स्त्री के साथ सम्बन्ध नहीं सह पाती। वह मानती है कि ''स्त्री–पुरुष

के मध्य मित्र का कोई सम्बन्ध नहीं होता है।''[109] अमला को भी अपने वैवाहिक जीवन में कई दुःखदायी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। उसके पिता के द्वारा दूसरा विवाह का सुझाव दिया जाता है, तब वह कहती है: ''मैं इतनी निर्बल और निरीह नहीं हूँ कि जीवन बिताने के लिए कोई सहारा चाहिए।''[110] वह कहती है: ''विवाह एक फंदा है जो प्यार का गला घोंट देता है।''[111]

'रुकोगी नहीं राधिका' में राधिका डैम से वैचारिक मतभेदों के कारण अलग हो जाती है।

'बेघर' उपन्यास का नायक परमजीत भी अपनी यौन सम्बन्धी रुढ़िगत मान्यता की वजह से संजीवनी के साथ तलाक ले लेता है।

सुधा अरोड़ा ने तलाक सम्बन्धी अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है:''तलाक आसान सिर्फ इस अर्थ में होने चाहिए कि रिश्ते जब दोनों ओर से अर्थ खो दें, तो उन्हें ढोते चले जाने का कोई तुक नहीं है। लेकिन यह भी पाया जाता है कि ज्यादातर झगड़े या तलाक की इच्छा के मूल में कोई कारण नहीं होता। बंधन वह कैसा भी हो, नैतिक, सामाजिक, पारिवारिक – निभाना मुश्किल होता है। वह बंधन जितना कसता जाता है, व्यक्ति उतना ही उससे छटकता है।''[112]

'झूठा सच' में कनक का पति जयदेव पुरी से उसकी बर्बर कामवृद्धि के कारण खीझकर तलाक दे देता है। 'नदी के द्वीप' में रेखा अपने पति से इसलिए सम्बन्ध विच्छेद कर लेती है कि वह उसे क्षुधापूर्ति का साधन मानता है। 'एक कटी हुई जिन्दगी, एक कटा हुआ कागज़' की दीप्ति भी अपने पति का विकृत रूप सामने आने पर उसे तलाक दे देती है। 'अमृत और विष' के भवानी और उषा प्रेम विवाह तो कर लेते हैं लेकिन प्रेम विवाह असफल हो जाता है। जोश में आकर भवानी विवाह तो कर लेता है, लेकिन अब उसका कैरियर बिगडने लगता है तो वह सारा दोष उषा पर मढ़कर उसे दो बच्चों सहित छोड़ देता है। उषा के साथ सम्बन्ध विच्छेद कर देता है।

'पत्थरों का शहर' उपन्यास की इति युवावस्था में एक विवाहित विदेशी से प्रेम करती है। यही नहीं, उसके साथ ऑस्ट्रेलिया भी जाती है, जहाँ उसका अपनी पत्नी के साथ तलाक सम्बन्धी मुकदमा चलता है। इसी बीच इरा और विदेशी जॉक के बीच दूरियाँ बढ़ती हैं और वह उस सम्बन्ध पर पूर्ण विराम रखकर वापस चली आती है। इसी उपन्यास की तृप्ता का अपने पति से तलाक मात्र इसलिए हो जाता है कि अपने पति की भाँति तृप्ता भी अपने अस्तित्व को कायम रखना चाहती है।

मध्यमवर्गीय समाज में आज के लग्न जीवन या तो ध्वसं होने के कगार पर हैं, या तो भी लग्न–

जीवन तनावपूर्ण हैं। 'एक चिथड़ा सुख' का डैरी बिट्टी से तो इरा नित्ती से भरपूर प्यार करते हैं। पर यहाँ नित्ती के साथ विडम्बना यह है कि वह एक ऐसी पत्नी के साथ अपना जीवन बिताने को विवश है जिससे उसका सम्पूर्ण साक्षात्कार ही नहीं हो पाता। 'मेरी तेरी उसकी बात' के उषा और अमर प्रेम विवाह कर लेते हैं। अमर के शक्की स्वभाव के कारण उनके दाम्पत्य जीवन में भी दरारें देखने को मिलती हैं। इसी उपन्यास के अहमद रजा शेख का वैवाहिक जीवन भी सन्तोषपूर्ण नहीं रहता क्योंकि उनकी पत्नी की 'शारीरिक आवश्यकताएँ' बहुत जबरदस्त रहती हैं।

'अंधेरे बंद कमरे' में हरबंस और नीलिमा पति–पत्नी होते हुए भी मानसिक धरातल पर अपने आपको एक–दूसरे से बहुत दूर पाते हैं। सम्पूर्ण उपन्यास में दोनों के बीच झगड़े, मानसिक द्वंद्व, तनाव ही देखने को मिलता है। दोनों अपने के लिए महत्वकांक्षा, अहं की पूर्ति के लिए एक–दूसरे के साथ हमेशा कटे रहते हैं।

इस प्रकार साठोत्तरी उपन्यासों में मध्यमवर्ग से सम्बन्धित तलाक समस्या का निरुपण हुआ है।

– प्रेम और विवाहोत्तर सम्बन्ध की समस्याः

युवावर्ग में खास तौर से प्रेम और विवाहोत्तर सम्बन्ध ज्यादा देखने को मिलता है। समाज में जाने–अनजाने विवाहेत्तर सम्बन्द किसी भी स्त्री–पुरुष के बन जाते हैं तो उसकी अंगत जिंदगी तो दारूण, तनावपूर्ण और दुःखद होती ही है, उसके साथ परिवार के और सदस्य की भी हो जाती है।

'भूले बिसरे चित्र' में भी विवाहित जीवन के बाहर प्रेम का या शारीरिक सम्बन्धों का निरूपण हुआ है। मध्यवर्ग से सम्बन्ध रखनेवाला ज्वालाप्रसाद और जैदेवी के विवाहेत्तर सम्बन्ध को दिखाया है। ज्वालाप्रसाद की पत्नी आदर्श मध्यमवर्गीय हिन्दू नारी की तरह इस सम्बन्ध का स्वीकार कर लेती है।

आधुनिक शिक्षित पति–पत्नी के तनावपूर्ण स्थिति के कारण दोनों ही अन्यत्र आकर्षित होते हैं। 'दो एकान्त' में डॉ. विश्वास और वानीरा के मध्य यही तनावपूर्ण परिस्थिति का वर्णन हुआ है। डॉ. विश्वास वनीरा का परिचय अपने मित्र मंडल में करवाते हैं। लेकिन पति की उदासीनता के कारण वानीरा मेजर क्लाइड और आनन्द की तरफ आकर्षित होती है। वानीरा और आनंद के शारीरिक सम्बन्ध के कारण वानीरा को गर्भ रहता है।

'मन वृंदावन' में पत्नी सुमन पति के साथ रहते हुए भी उसके मित्र सुबंधु से प्रेम करती है। पति

इस तथ्य को अच्छी तरह जानते हुए भी चुप रहता है। उसे लगता है, चलो पत्नी को कहीं न कहीं व्यस्त रहना चाहिए।

'अलग–अलग वैतरणी' में पटहनिया जैसी शिक्षित युवती की शादी नामर्द कल्लु के हाथ बाँधे देती है। इस वजह से वह बिपिन बाबु से आकर्षित होती है। 'मनुष्य के रूप' में मनोरमा का प्रेमविवाह सुतलीवाला से होता है। लेकिन सुतलीवाला पत्नी की यौन–तृप्ति नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति में वह अपनी शारीरिक भूख को मिटाने के लिए अपने बचपन के मित्र भूषण के साथ विवाहेत्तर सम्बन्ध स्थापित करती है।

रमेश बक्षी कृत 'बैसाखियों वाली इमारत' का मध्यमवर्गीय नायक भी अपनी पत्नी के अलावा मिस जायस के साथ शारीरिक सम्बन्ध रखता है। मिस जायस भी विवाह परम्परा का विरोध करती हुई कहती है: ''मैं प्यार मुहब्बत में बिल्कुल विश्वास नहीं करती। मैं ऐसी पहचान चाहती हूँ जिसका भूत–भविष्य कुछ भी नहीं हो। कटे हुए लोग कहीं मिल जायें और मिलकर किसी भी दिशा में खो जायें। मैं इसी को आदर्श मानती हूँ।''[113]

'पथ की खोज' का चन्द्रनाथ भी अपनी पत्नी के अलावा सुशीला के साथ प्रेम संबंध रखता है। प्रेम सम्बन्धी अपनी धारणाओं को व्यक्त करता हुआ कहता है: ''प्रेम को आध्यात्मिक वस्तु न मानकर शारीरिक मानता है।''[114]

'डाक बंगला' की इरा भी विमल से प्रेम करने के पश्चात् अन्य पुरुषों बतरा, चन्द्रमोहन से भी सम्बन्ध रखती है। प्रेम सम्बन्ध के बारे में उसका मानना है कि ''जब भी मैंने आदमी को अकेले में देखा, मेरा मन उसके लिए करुण हो आया है। क्योंकि हर आदमी जीवन में बहुत दुःखी है। और उसके दुख के बदले (मैं) उसे प्यार ही दे सकती हूँ। मैं हर आदमी से अच्छी तरह बोलने के लिए, प्यार करने के लिए मजबूर हूँ।''[115]

'तीसरा आदमी' में चित्रा अपने पति नरेश के अलावा सुमन्त के साथ प्रेम सम्बन्ध रखती है। इस वजह से तीनों के जीवन में पीड़ा एवम् अजीब कश्मकश बनी रहती है।

'सूरजमुखी अंधेरे के' में भी मध्यमवर्गीय युवा दिवाकर अपनी पत्नी के अलावा रत्ती से विवाहेत्तर सम्बन्ध स्थापित करता है। वह अपनी पत्नी से भी इस विषय में बात करता है, जो कि इसके सम्बन्ध को सहज रूप में ही लेती है।

'उसके हिस्से की धूप' में मनीषा अपने पति जितेन के अलावा मधुकर से सम्बन्ध रखती है। पति

की उसके प्रति उदासीनता और उपेक्षा के भाव से व्यथित होकर ही वह मधुकर से आकर्षित होती है। इस स्थिति के पीछे जितेन भी उतना ही जिम्मेदार है, क्योंकि कारखाने का बड़ा प्रबन्धक होने के कारण उसके पास भी पत्नी के लिए समय का अभाव है। जबकि मनीषा को मधुकर जैसे सम्पूर्ण पति की जरुरत है जो उसका ख्याल रख सके।

'एक कटी हुई जिन्दगी एक कटा हुआ कागज़' में दीप्ति भी अपने पति केवल के अलावा अनाम के साथ प्रेम–सम्बन्ध रखती है।

'कड़ियाँ' उपन्यास के पति–पत्नी महेन्द्र और प्रेमिला का दाम्पत्यजीवन भी विवाहेत्तर सम्बन्ध के कारण टूटता हुआ देखने को मिलता है। प्रेमिला प्राचीन परम्पराओं में माननेवाली है। उसमें सौन्दर्य है लेकिन उसका प्रदर्शन नहीं करती। घरेलू स्त्री की तरह वह पति से ज्यादा अपने बेटे से प्रेम करती है। इसी वजह से महेन्द्र अपनी ऑफिस की कैशियर मिस सुषमा के प्रति आकृष्ट होकर विवाहेत्तर सम्बन्ध स्थापित करता है। महेन्द्र भावावेश में अपनी पत्नी प्रेमिला से क्षमा भी माँगता है लेकिन प्रेमिला उसे माफ न करके उसे छोड़कर चली जाती है। महेन्द्र की गलती उसका बेटा पप्पू भी भुगतता है। उसे अनाथ की तरह जिन्दगी बितानी पड़ती है। इस प्रकार विवाहेत्तर सम्बन्ध चाहे स्त्री के हों या पुरुष के, उसका विष पूरे परिवार में घुल जाता है और उसे बरबाद कर देता है।

बेकारी समस्याः

मध्यमवर्ग में बेकारी समस्या एक व्यापक समस्या है। इससे प्रायः दूसरी अनेक समस्याओं का जन्म होता है। बेकारी के कारण समाज में भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता, चोरी, हत्या आदि विविध समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। फलतः समाज में अशांति का सूत्रपात होता है। शिक्षा के अभाव को भी बेकारी का एक कारण माना जाना चाहिए।

'अन्धेरे बंद कमरे', 'टेराकोटा', 'एक टूटा हुआ आदमी', 'कृष्णकली', 'डाक बंगला', 'शहर में घूमता आईना', 'एक चूहे की मौत' उपन्यासों में मध्यमवर्गीय समाज में प्रवर्तमान इस समस्या का उल्लेख हुआ है।

'जल टूटता हुआ' में विपिन जमींदार का बेटा है जो एम.ए. करके साल भर बेकार का जीवन गाँव में व्यतीत करता है।

'कन्दली और कुहासे' में लेखक ने किशू के माध्यम से आज के होनहार मध्यमवर्गीय नौजवानों के करुण चित्र को उभारा है। वे बेचारे नौकरी ढूँढते-ढूँढते कुत्ते की मौत मर जाते हैं। किशू भी बेकारी की समस्या से घिरा हुआ है। इस वजह से वह मीरा के साथ इश्क में भी रस नहीं ले पाता। उपन्यास का संवाद इस बात को पुष्टि देनेवाला हैः

''तुमने कितनी जगह अर्जियाँ भेजी हैं, किशू?

तीन-चार जगह।

मैंने अभी एक सौ सत्तर जगहों के लिए अर्जियाँ भेजी हैं, कहीं न कहीं तो इस बेईमानी, भ्रष्टाचार और भतीजावाद के दिनों में भी चुन लिया जाऊँगा।''[116]

'अमृत और विष' के मध्यमवर्गीय युवा लच्छू ने बी.ए. तक की शिक्षा प्राप्त की है। नौकरी के लिए उसे बड़े प्रयत्न करने पड़ते हैं। डॅ. आत्माराम के यहाँ नौकरी मिलने पर वह मास्को तक की यात्रा कर आता है। बाद में डॉ. साहब उसे नौकरी से निकाल देते हैं। तब वह बेरोजगार हो जाता है। इसकी इस मजबूरी का उल्लेख करते हुए लेखक ने लिखा हैः ''उनके सामने कुण्ठित नौजवान भारत बैठा था, जो बेकार है।''[117] डॉ. विमलासिंह का कहना हैः ''लच्छू में एक आम भारतीय हताश-निराश, बेरोजगार युवा की तस्वीर दिखायी देती है।''[118]

'टोपी शुक्ला' का टोपी शुक्ला भी पीएच.डी. तक की पढ़ाई करता है। वह भी बेरोजगार इस संसार से उठ जाता है।

'पत्थरों का शहर' में इति भी पीएच.डी. तक पढ़ी-लिखी है, लेकिन नौकरी वह भी नहीं करती। एक तरह से बेरोजगार ही है।

'दूसरी तरफ' का मध्यमवर्गीय युवा केवलकुमार भी शिक्षा ग्रहण करके सामान्य कम्पनी में नौकरी करता है, लेकिन कम्पनी बंद हो जाने पर बेकार हो जाता है।

'थके पाँव' का मोहन बी.ए., एलएल.बी. है। इस उपन्यास का यह सर्वाधिक पीड़ित, दुःखी और बेरोजगारी की यातना झेलनेवाला पात्र है। 'गोबर गणेश' का युवा पात्र जगन बी.ए. तक पढ़कर भी बेरोजगार है।

गुजराती उपन्यासों में अभिव्यक्त मध्यमवर्गीय समस्याएँ:

स्वातंत्र्योत्तर गुजराती उपन्यासों में बदलाव के बिन्दु स्वाभाविक तौर पर नजर आते हैं क्योंकि दो–दो विश्वयुद्धों से थका मानव–संसार, मानव में उपजी हताशा, निराशा, व्यर्थता बोध, स्वयं के अस्तित्व कीखोज जैसे अनेक संवेदनों ने मध्यमवर्गीय समाज को विचलित किया है। श्री सुरेश जोशी कहते हैं: ''वर्तमान मानवी फीणनी दीवालोनी वच्चे अश्रुधर उपर राखीने डगलीओ बनावीने आधारशिला शोधतो उभो छे।''[119]
(आज का मानव झाग की दीवारों के बीच अश्रुओं का ढेर बनाकर अपनी आधारशिला (अस्तित्व) खोजता हुआ उभरता है। बौद्धिक असफलता को नए उपन्यासकारों ने वाणी दी है।''– श्री सुरेश जोशी)

साठोत्तरी गुजराती साहित्य के विवेच्य उपन्यासों में समाज के बदलाव की सामाजिक–सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक और नैतिक मूल्यों की शाश्वतता और सहजता समयगत परिवेश में स्वतः ही डगमगा गई थी। गुजराती समाज में मध्यमवर्गीय परिवारों के मध्य संयुक्त परिवारों का विघटन, पूँजीगत अंधा–दौड़, नैतिक मूल्यों का ह्रास, सामाजिक समस्याओं की विविधता जैसे दहेज, बेमेल–विवाह, विधवा विवाह, तलाक, नारी मुक्ति, बेरोजगारी इत्यादि ज्वलंत प्रश्न मानव–मन को झकझोरने लगे, यही नहीं सामाजिक समस्याओं के साथ–साथ वैयक्तिक समस्याएँ जैसे प्रेम और यौन समस्या, विवाहेत्तर संबंध, संत्रास, अलगाव बोध, नैराश्य, घुटन, विवशताएँ आदि खुलकर यथार्थरूप में प्रस्तुत हुई हैं।

सातवें दशक का गुजराती कथा साहित्य जहाँ अस्तित्ववादी–व्यक्तिवादी विचारों से प्रेरित होकर अभिव्यक्त होता है वहीं आठवें दशक में मनोवैज्ञानिकता–वैयक्तिकता के साथ–साथ समाजमुखी अभिव्यक्ति विशेष रूप से हुई।

विवेच्य गुजराती उपन्यासों में मध्यमवर्ग की समस्याएँ:

साठोत्तरी गुजराती उपन्यासों में गुजराती–समाज की स्वच्छंद जीवन यापन शैली का निरुपण हुआ है। समाज की बनी–बनाई नैतिक परम्पराएँ तोड़कर आगे बढ़ने की होड़, भौतिक उन्नति–विकास, नारी मुक्ति, स्वतंत्रता–स्वच्छंदता, स्वयं के अस्तित्व की पहचान, मूल्यों का पुनःपरीक्षण इत्यादि अनेक पहलुओं के चिंतन ने मध्यमवर्ग की अपनी अलग बौद्धिक पहचान बनाई परंतु साथ ही मानव अंतःसंबंधों में अनेक उलझनें, प्रेम–यौन उत्पीड़न, दमन–शोषण युक्त समाज अपने–आप आकार लेने लगा, इन्हीं कारणों से समाज में दहेज, तलाक, विघटन, पारिवारिक टूटन, मनोवैज्ञानिक रोग, अकेलापन आदि अनेक दूषण भी पनपने लगे। इन सभी का चित्रण साठोत्तरी उपन्यासों के गुजराती साहित्य में अभिव्यक्त हुआ है।

संयुक्त परिवार का विघटनः

भारतीय समाज के मध्यमवर्गीय परिवारों में परस्पर संबंधों का आत्म–संस्कारित ढाँचा रहा है, जिन्हें रामयण, रामचरित मानस, गीता, भागवत आदि शास्त्रों की कथाओं ने सींचा था। परंतु समाज बदला उसी के साथ मानव मूल्य और विचारधाराएँ बदलीं। अतः संयुक्त परिवार का बना बनाया रूप भी बदला क्योंकि समाज में जन–संख्या वृद्धि, बेरोजगारी, शैक्षिक परिवेश, स्वार्थअंधता, पैसों की दौड़ आदि ने अप्रत्यक्ष रूप से संयुक्त परिवार को निगलना शुरु कर दिया। प्रत्यक्ष शब्द से अपनी स्वतंत्रता, स्वच्छंदता को सुरक्षित रखना चाहने लगा। अपना अस्तित्व, अपना विकास चाहने लगा। विनेश अंताणी अपने उपन्यास में इस स्थिति को सहज ही बताते हैं। विधवा चारू के दोनों बेटे अपनी नौकरी के कारण अपने परिवार के साथ रहने लगते हैं। चारू का प्रेमी निकेत जब उससे उसके परिवार के बारे में पूछता है, तब वह कहती हैः

''अे बेंग्लोरमां छे। दिवाकर हता त्यारे ज अे बेंग्लोर गयो छे। अेक प्राइवेट फर्ममां पब्लिक रिलेशन ऑफिसर छे। शैल अत्यारे दिल्लीमां छे। एक फ्लेट पण लीधो छे न्यु राजेन्द्रनगरमां। अे त्यांज रहे छे। स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्समां लेक्चरर छे।''[120]

पारिवारिक विघटन का कारण केवल झगड़ा ही हो ऐसा नहीं है, बेलकिं परिजन उपन्यास की तरह नौकरी की विवशता भी हो सकती है। लेकिन चारू परिवार के विघटन से दुःखी भी होती है तभी तो वह निकेत से कहती हैः ''समृद्धि अने सुखनो संतोष मात्र पैसामां माणी शकातो नथी। संतानोनो स्वभाव पण अेनो मोटो भाग छे।''[121]

(समृद्धि और सुख का संतोष केवल पैसों से नहीं नापा जा सकता। संतानों का स्वभाव भी उसमें अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।)

इस प्रकार कई बार संयुक्त कुटुंब के बिखराव का कारण पैसा और विकास दोनों बन जाता है।

धीरुबहेन पटेल के 'आगन्तुक' उपन्यास में भी संयुक्त परिवार की पीड़ा चित्रित हुई है। इस उपन्यास में कथा नायक इशान पहले तो घर छोड़कर संन्यासी हो जाता है, और बाद में पंद्रह साल बाद वापस अपने घर भाइयों के यहाँ लौट आता है। आदित्य, अर्णव, आशुतोष, रीमा और शालु भाभी अपने लौटे हुए भाई ईशान को परिवार में शामिल करना नहीं चाहते। आशुतोष कहता हैः ''तारे विचारवुं जोइए, अमारी पण कंई मुसीबतो होय, अमारी जवाबदारीओ होय, अमने फावे अेम छे के नहीं अे तारे जोवुं जोइए ने?''[122]

(तुम्हें सोचना चाहिए कि हमारी भी कोई मुसीबतें होती हैं, हमारी कुछ जिम्मेदारियाँ होती हैं। हमें अच्छा लगेगा कि नहीं यह तुम्हें सोचना चाहिए।)

इशान को घर में रखने के लिए भाइयों में परस्पर नोंक–झोंक होती है। शालु भाभी कहती हैः ''आशु भाईनुं गर मोटुं छे, भले नानुं होय तो आ अेक स्पेश रूम खरो। ज्यारे मारे त्यां तो त्रण ज बेडरूम छे। अेक अमारो, अेक नैनसीनो अने एक गेस्टरूम। पण अेम कोईने राखी न शकाय। ओचिंता कई गेस्ट आवी पड़े तो शुं करीये?''[123]

(आशुभाई का घर बड़ा है। भले ही छोटा हो तो भी एक स्पेश रूम तो है ही। जबकि मेरे यहाँ तो तीन ही बेडरूम है। एक हमारा, एक नैन्सी का और एक गेस्ट रूम...। परंतु इसमें किसी को रखा नहीं जा सकता। अचानक कोई गेस्ट आ जाये तो क्या करें?)

यहाँ तक कि सगे भाई इशान की जासूसी तक भी करवाते हैं कि आखिर वह क्यों लौट आया। लेकिन इस परिवार में नैतिक मूल्य इतना विघटित नहीं हुआ इसलिए आशुतोष अपना आत्मीय संवेदन प्रकट करता हैः''अेने लाग्युं के अेनी दुनिया खोवाई गई छे, थोड़ा वखतमां आ शुं थई गयुं? मात्र लोहीनी सगाई के बीजुं कशुंक? अेम तो अर्णव पण सगो भाई छे पण इशानथी छूटा पडता बहु पीडा थाय छे... ऑफिस जता सुधीमां आशुतोषे नक्की कर्यु के गमे अेम करीने इशानने बे रूम लई आपवा.. संन्यासी न थयो होत तो त्रीजो भाग न माँगत ?''[124]

(उसे लगा कि उसकी दुनिया खो गई है। मात्र खून का सम्बन्ध या कुछ और? ऐसे तो अर्णव भी सगा भाई है, पर इशान से अलग होते बहुत पीड़ा होती है। ऑफिस जाते हुए आशुतोष ने तय कर लिया कि कुछ भी हो, ईशान को दो रूम ले देता हूँ.. संन्यासी न होता तो क्या तीसरा भाग न मांगता?)

तो क्या यह इशान की भूल थी कि वह संन्यासी होकर घर से दूर अपनी भागीदारी से वंचित होता है?

कई बार व्यक्ति की अपनी अति महत्वाकांक्षा भी उसे परिवार से तोड़ देती है। 'अमृता' उपन्यास की नायिका अपने स्वच्छंद स्वमान के कारण परिवार का संयुक्त परिवेश छोड़ देती है। परंतु अत्यधिक स्वतंत्रता न तो उसे संतोष दे पाती है और न ही प्रेम, अतः हारकर वह प्रेमी दिवाकर से कहती हैः

''आजे इच्छा थाय के स्वजनो साथे रहेवा चाली जाऊँ, मारे स्वातंत्र्य नथी जोइतुं, संवादिता जोइए छे, स्नेह जोइए छे।''[125]

(आज मुझे इच्छा हो रही है कि स्वजनों के साथ रहने चली जाऊँ, मुझे स्वतंत्रता नहीं चाहिए, संवादिता चाहिए, स्नेह चाहिए।)

आरंभ से ही मनुष्य की प्रकृति कबीले, समूह या कुटुम्ब में रहने की रही है। पर आधुनिक जीवन शैली में पैसे कमाने का व्यक्तिगत लोभ, विकास की वृद्धि को महत्व देने के कारण परिवार अपना एकल–स्वरूप ग्रहण करते गए। एकल–प्रथा के कारण हुआ यह कि पारम्परिक जीवन–मूल्यों का ह्रास होने लगा और लड़का–लड़की सभी को लेकर माँ–बाप के भीतर भी स्वच्छंद–अवधारणाएँ बनने लगीं।

ईवा डेव के 'मिश्र लोही' उपन्यास की पृष्ठभूमि भी कुछ ऐसी है। पति की रिज़र्व बैंक की नौकरी के कारण मंजूला और शरद अहमदाबाद अपने माता–पिता को छोड़कर वडोदरा रहने लगते हैं। वे अपनी बेटी अणिमा को मुक्त–वातावरण में पालते–पोषते हैं। जिसका एडमिशन वॉशिंग्टन युनिवर्सिटी के विज्ञान कम्प्यूटर शाखा में हो जाता है। पारिवारिक विघटन के कारण अणिमा मे भारतीय संस्कार मूल्यों का अभाव रहता है। वह पढ़ने के लिए अकेली अमेरिका जाने के लिए तैयार होती है। संयुक्त कुटुम्ब की नैतिक परम्परा के उल्लंघन से दादाजी दुःखी हैं। वे कहते हैः

''छोकरी माणस, अेवाफाटेला देशमां अेकली रहे, कोईनी देखभाळ विना... अे शुं करी बेठी? पाछी आवी मानो के, तो अहीं नातमां अेवां घर अने माणसो केटलां छे जे अेने स्वीकारशे? दीकरीनुं भविष्य ते विचार्युं छे खरुं?''[126] (लड़की जात, ऐसे स्वच्छंद गिरे देश में अकेली रहे, वह भी किसी की देखभाल बिना... यह क्या कर बैठे? फिर वापस लौटे तो भी यहाँ अपनी बिरादरी में कितने घर और मनुष्य हैं जो उसे स्वीकार करेंगे ? लड़की का भविष्य भी विचारा है भला?)

उपन्यास में अणिमा अमेरिका में पढ़ते हुए वहीं पार्ट टाइम जॉब भी शुरु कर देती है और यही नहीं वह एक नीग्रो अफ्रीकी 'ब्राक' नामक लड़के से 'लवमैरिज' भी कर लेती है। जिसका खामियाजा उसे भुगतना पड़ता है कि उसकी नीग्रो बेटी बड़ी डॉक्टरी देखरेख में मुश्किल के साथ होती है तता समाज के भारतीय जाति–द्वेष को भी भोगना पड़ता है।

इस प्रकार एकल–परिवार प्रथा ने जहाँ स्वच्छंदता–स्वतंत्रता की धारणाएँ मजबूत की हैं, वहीं अकेलेपन, तनाव और हताशा को बढ़ाया है। संयुक्त परिवारों में व्यक्ति इन मानसिक बीमारियों का भोग नहीं बनता। यही कारण है कि भारतीय समाज की संयुक्त–परिवार प्रथा एक उत्तम व्यवस्था थी, जो आज मुश्किल से ही देखने को मिलती है। संयुक्त परिवार विघटन सजमा की एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में विद्यमान है।

पारंपरिक नैतिक मूल्यों का ह्रासः

साठोत्तरी गुजराती उपन्यासों में नैतिकता के नये मानदण्ड मिलते हैं। एक तो मध्यमवर्ग शिक्षित, बौद्धिक हो गया है। अतः वह स्वच्छंद अभिरुचि का पोषक हुआ। उसके लिए वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही वर्जनाएँ टूटीं। परंपरित लिहाज और मर्यादा की प्रवृत्ति को छोड़कर वह स्वार्थ प्रेरित प्रवृत्ति की ओर मुडता है। नारी देह के प्रति आकर्षण, बाजारी लोभ और चकाचौंध ने मध्यमवर्गीय चेतना को भरमाया ही अधिक है। अतः नारी और पुरुष दोनों में नैतिक जीवन मूल्यों का ह्रास दिखायी देता है।

रघुवीर चौधरी के उपन्यास में प्रो. उदयन इस सोचनीय स्थिति पर कहते हैंः ''स्थिर थईने मानसमां संस्कार रूपे दाखल थवा मथता आवा तथाकथित मूल्योने तोडीश। अहीं तो महामानव पण केटलां बधा? अने दरेकना संदेशोनो भार विद्यार्थीना माथे..... माणस उछीनुं लईने केटलुं टकी शके?''[127]

(स्थिर होकर मानस में संस्कार के रूप में दाखिल होने के लिए प्रयत्नशील ऐसे कई संस्कारों को मैं तोड़ दूँगा। यहाँ तो महामानव भी कितने सारे हैं? और हरेक के संदेश का भार विद्यार्थियों के सिर पर.... मनुष्य उधार लेकर कितना टिक सकता है?)

दर असल, परंपरा से पाये नैतिक मूल्य और आधुनिक बदले हुए मूल्यों ने मानव मन को बहुत ही उद्वेलित किया है। यहां तक कि 'प्रेम' को भी प्रश्नचिन्ह के घेरे में खड़ा होना पड़ा। नारी स्वतंत्रता ने भी नैतिक मूल्यों के पतन को बढ़ाया ही। 'अमृता' उपन्यास में पाप-पुण्य, हित-अहित जैसे प्रश्न भी मानव समाज के लिए अर्थ हीन हो गये। अमृता कहती हैः ''हित अने अहित, सारुं अने खोटुं – आ बधो उपर छल्लो भेद आपणने पोतानामांथी दूर लई जतो? एवी बधी गणतरी करवा जतां हुं तो मने स्वार्थी लागुं छुं, आपण समग्र आम वहेंचाई जाय ते बरोबर नथी, आपणे पोताना अस्तित्वने वफादार रहीये ते जरुरी छे।''[128] (हित और अहित, अच्छा और बुरा – यह सब ऊपरी भेद हमें खुद से दूर ले जाता है, ऐसी सारी गिनती करने जाते मैं खुद को स्वार्थी लगती हूँ। हम सब समग्र रूप से इस तरह बिखर जायें वह ठीक नहीं। हमें अस्तित्व के प्रति वफादार रहना चाहिए, यह जरुरी है।)

नारी और पुरुषों के सम्बन्धों में निरंतर स्वच्छंदता और नैतिक पतन ने समाज में बड़ी विचित्र स्थिति पैदा कर दी। 'छिन्न पत्र' की नायिका माला स्वच्छंदता की हद में यहाँ तक आगे बढ़ जाती है कि वह अपने कई प्रेमियों के साथ सम्बन्ध रखती है। माला विजय को तो जब चाहे तब उपेक्षा के साथ बर्ताव करती है और अपने मनमाफिक व्यवहार करती है। एक प्रेम को कहती हैः

'ऊभा रहो, तमे तो खूब अधीरा छो!
केम, तने दूर ऊभो रहीने जोया करुं?
ना, कशुं भान तो रहेतुं नथी?
कंकु लुछाई जाय छे ने अेनो डाघ पडे छे, तमारा कपडां पर, पछी अे चाड़ी खाशे तो?''[129]
(खड़े रहो, तुम तो बहुत अधीर बनते हो।
क्यों तुमसे दूर रहकर तुम्हें देखा करुं?
नहीं, कुछ ध्यान तो रहता नहीं?
सिंदूर पूंछ जायेगा और उसका दाग कपड़े पर लग जायेगा, तो खामोखाह चिड़ोगे।)

राधेश्याम शर्मा के 'फेरो' उपन्यास में तो नैतिक मूल्यों का ह्रास इस हद तक पाया जाता है कि उन्होंने तो दाम्पत्य जीवन के जातीय संकेत और अतृप्ति को खुलकंर नायिका कहती है: ''कोई वार राते समागम प्रसंगे आवुं बोलीअे तो उत्तेजनानी कोई विशिष्ट अनुभूति उपलब्ध थाय खरी? ताळुं लगाव्युं, चावी खोसी, फेरवीने ताळुं बंध! संतोष न थयो तो फरी पाछुं ताळुं खेंची तपास्युं। दूधे भर्या घड़ा जेवां स्तन–वजनदार ताळां। ताळांने स्पर्शतांनी साथे हुं शून्यतामांथी सभरतामां, रणमांथी घरमां पहोंची जाऊँ छुं।''[130]

(किसी दिन रात्रि समागम के प्रसंग पर ऐसा बोलें तो उत्तेजना की कोई विशिष्ट अनुभूति हासिल होती है क्या? ताला लगाया, चाबी डाली और घुमाकर फिर ताला बंध। तृप्ति न हुई तो फिर से ताला खींचा और खोजा। दूध से भरे हुए घड़े के समान वक्ष – वजनदार तालों के स्पर्श के साथ शून्यता में से प्राप्ति जैसे रण में से घर पहुँच जाती हूँ।)

मधुराय के उपन्यास 'किम्बल रेवन्सवूड' में आज के सुशिक्षित नौजवान 'सेक्स' के बारे में मुक्त मन से चर्चा करते हैं। विशाखा योगेश से साफ कहती है: ''साव साचुं कहुं तो सेक्सी छोकरो गमे।''[131] (सही में, सच कहुँ तो सेक्सी लड़का अच्छा लगता है।)

मिस अेक्स बनकर झंखना जब योगेश से आधी रात को बातचीत करती है वह भी आज के नवीन नैतिक मूल्यों का अच्छा उदाहरण है। योगेश से वह कामोत्तेजक बातें करती है। हालाँकि वह कभी योगेश से मिली भी नहीं है। योगेश को आधी रात को फोन करती है।

''योगेश, तुं मने बहु गमे छे...तुं मारी पासे आव...'

मारी सेज सूनी छे, योगेश, मने तारा भरावदार हाथ याद आवे छे, तारा होठ, तारा दाँत, तारी जीभ....

मारी आँखमां मारी अेक–अेक पांपण ऊपर तारा होठनी भीनाश छे. योगेश, आई लव यु उ उ''[132]

(योगेश तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो। तुम मेरे पास आओ...
मेरी सेज सूनी है। योगेश, मुझे तेरे भरावदार हाथ याद आते हैं। तेरे होंठ, तेरे दाँत, तेरी जीभ..
मेरी आँख की एक–एक पलक पर तेरे होंठ की नमी है। योगेश, आई लव यु उ उ)

किशोर जादव कृत 'निशाचक्र' का नायक प्रेम की क्षणों में अपनी पत्नी अनंगलीला को छोड़कर जब सांगकोला के साथ होता है तब वह सोचता है: ''मारामां सामे मंडरायेलो कम सांगकोला नो मोटो चहेरो में देख्यो। नमी पड़ती छतनी जेम तेनो देह मारा पर ढळी रह्यो हतो।''[133] (मेरे मुँह के सामने सांगकुला का बड़ा चेहरा मंडराया, झुकी हुई छत के समान उसकी देह गिर रही थी।)

इस प्रकार स्वच्छंदता की हद ने पुरुष और स्त्री दोनों के लिए स्वैच्छिक यौनाचार की संभावना खोल दी, जो एक स्वच्छ समाज के लिए नैतिक पतन का सूचक बन जाती है।

विधवा विवाह की समस्या:

नारी जीवन में वैधव्य जैसे भारतीय समाज के मध्यवर्गीय परिवारों में एक अभिशाप के रूप में उभरता है। पति के मरने के बाद उसके जीवन में हर्ष उल्लास, विविध परिधान, श्रृंगार आदि जैसे सब छीन जाते हैं।

इला आरब मेहता कृत 'बत्रीस पुतळीनी वेदना' में शास्त्रीजी कहते हैं: ''विधवा स्त्री पुनर्लग्न करे ते मारी दृष्टिअे अेटला माटे योग्य नथी के तेमां प्रेमनी ऊंची भावनानो ह्रास थाय छे।''[134] (विधवा पुनर्विवाह करे यह मेरी दृष्टि में इसलिए योग्य नहीं है, क्योंकि इससे प्रेम की उदात्त भावना का ह्रास होता है।) शास्त्रीजी का नारी के विषय में मानना है: ''सुंदरता, बुद्धि के महत्वकांक्षा अे पश्चिमनो आदर्श छे। भारतीय नारीनो आदर्श छे त्याग, तप अने समर्पण।''[135] (सुंदरता, बुद्धि और महत्वकांक्षा यह पश्चिम के आदर्श हैं। भारतीय नारी के आदर्श हैं त्याग, तप और समर्पण।)

उपन्यास 'प्रियजन' की नायिका चारू वैधव्य का जीवन जीती है जिसके कारण उसमें अकेलेपन की और भ्रम की स्थिति पैदा हो जाती है। विधवा चारु प्रेमी निकेत से कहती हैः ''मने हवे कशुं ज गमतुं नथी। हवे अेकली रहुं छुं, बे वर्षथी अेटले मारा संदर्भोथी पण जाणे मुक्त थवानी कोशिश करुं छुं।''[136] (मुझे अब कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अब... अकेली रहती हूँ दो सालों से इसलिए अपने संदर्भो से भी मुक्त होने की कोशिश करती हूँ।)

वैधव्य स्थिति में अकेले रहते–रहते नारी के भीतर कई मनोवैज्ञानिक रोग होने की संभावनाएँ बन जाती हैं। वह अकेलेपन, हताशा और निराशा की शिकार तो बनती ही है, कई बार 'भ्रम' जैसी स्थितियों की भी भोग्या बन जाती है। जैसे 'प्रियजन' की नायिका चारु अपने वैधव्य के दौरान रात्रि में मृत्युपरांत पति दिवाकर को कक्ष में चहलकदमी करते हुए महसूस करना या प्रेमी निकेत को दिवाकर और दिवाकर को निकेत समझ लेने की भ्रामक स्थिति से गुजरती हैः

''मने लाग्युं के बहारना कमरामां दिवाकर छे अे अे अजंप आंटा लगावी रह्यो छे. अेना ज पगलांनो अवाज मने संभळायो..''[137] (मुझे लगा कि बाहर के कक्ष में दिवाकर है और वह लगातार चक्कर लगा रहा है। उसके ही कदमों की आवाज मुझे सुनाई दी।)

कभी–कभी तो वैधव्य की यह वेदना इतनी असह्य हो उठती है कि नारी अपने जीवन को ही व्यर्थ मानने लगती है। इसके लिए क्या वह स्वयं दोषी है? या समाज की बनी रुढ़ियाँ? प्रश्न यह भी है। 'प्रियजन' की चारु हो या 'बत्रीस पूतळीनी वेदना' की बड़ी अम्मा! वैधव्य नारी जीवन का रस सोंख लेता है।

'नाइटमेर' उपन्यास में मध्यमवर्गीय परिवार की विधवा बुआ अपने भाई के घर आकर रहने लगती है, तथा कई महत्वपूर्ण मामलों में हस्तक्षेप कर अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने की कोशिश करती है। परंतु भाई के स्वर्ग सिधारने के उपरांत वह अपने गांव (ससुराल) में लौट जाती है, क्योंकि नयी पीढ़ी हस्तक्षेप नहीं चाहती।

''मोटा छोकरानो संसार विना विघ्ने थाळे पड्यो छे अेवो निरांतनो श्वास लईने अेक वर्ष पछी विधवा फोई तेमना सासरे गामडे विदाय थया।''[138] (बड़े लड़के का जीवन बिना किसी विघ्न के ठीक हो गया, ऐसा विचार कर निश्चिंत विधवा बुआ एक वर्ष बाद अपने ससुराल के गाँव विदा हुई।)

'फेरो' उपन्यास में बाल विधवा बुढ़िया की आत्मकहानी दयनीय रूप में चित्रित की गई है, जिसे ट्रेन में देखकर विनायक चुपके से उसके हाथ में नोट रख देता है। पात्र विनायक सोचता हैः ''जरुर आ बाई

साथे कोईक भवनो ऋणानुबंध हशे.. अे बिस्त्रावाली विधवाने जोई त्यारे प्रथम दर्शन ज विनायकने लागेलुं के आने हुं ओळखुं छुं।'[139] (अवश्य इस बाई के साथ किसी जन्म का ऋणानुबंध होगा। ये विधवा बिस्त्रावाली बाई के प्रथम दर्शन पर ही लगा कि इसे मैं जानता हूँ।)

दहेज और बेमेल विवाह की समस्याः

भारतीय समाज गरीबी की तह से उठा होने के कारण मध्यमवर्ग के सामाजिक मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। दहेज जो परंपरा के रूप में समस्या नहीं बल्कि पुण्यकार्य, कन्यादान माना जाता था, वही धीरे–धीरे लोभवश कुरीति का रूप लेता गया। दहेज न लाने के कराण स्त्री अत्याचार, अन्याय बढ़ा। हालाँकि उच्चवर्ग में धनाढ्यता के कारण दहेज समस्या नहीं बनती, परंतु मध्यवर्ग के लोगों के लिए तो यह श्राप ही सिद्ध हुई।

मधुराय अपने उपन्यास में एन.आर.आई. नायक योगेश को दहेज विरोधी भाषण बताते हुए कहती हैं:

''लुच्चाओ, विकृत मगजना बदमाशो, समाजनी बदीओ, तवंगरोना घोर अन्यायो पर्दाफास करवानी हिंमत न होय तो लखो छो शा माटे? पशुओ छे, जंतुओ छो तमे बधां?''[140]

(लुच्चे, विकृत मस्तिष्क के बदमाशों, समाज की बुराईयों, मालदारों के घोर अन्यायों का पर्दाफाश करने की हिम्मत नहीं है तो लिखते हो किसलिए? पशु हो, जीवजंतु हो तुम सब?)

योगेश कन्या पसंदगी के लिए विदेश से भारत आया है। जब खुशालदास कार्टून उसे पचास हजार और गहने की बात करता है तब वह कहता है:

''मारा फादर साथे शी वात थई होय मने खबर नथी.. अेक पण पाई दहेज लेवानो नथी। छोकरी पहेरेले कपड़े ज बापना घेरथी आवशे, समज्या? नॉट अे सिंगल पैसा ऑफ दहेज।''[141]

(मेरे पिता के साथ क्या बातचीत हुई इसका मुझे पता नहीं। एक पाई भी दहेज लेने वाला नहीं हूँ। लड़की पहने हुए कपड़ों में ही पिता के घर से आएगी, समझे? नॉट ए सिंगल पैसा ऑफ दहेज।)

योगेश की विदेशी प्रेमिका पेगी उसे कहती है:

''तारा देशमां छोकराना लग्नमां पण फेमिलीनी मरजी नामरजी मोटो प्रश्न होय छे। मारा देशमां किन्डर गार्टनथी ज अेक बॉयफ्रेन्ड न होय त्यां सुधी छोकरी छोकरी गणाती नथी।''[142]

(तुम्हारे देश में लड़के के विवाह में भी परिवार की इच्छा–अनिच्छा एक बड़ा प्रश्न होता है। मेरे देश में जहाँ किन्डर गार्टन से ही एक बॉयफ्रेन्ड नहीं होता, तब तक लड़की लड़की नहीं गिनी जाती।)

सचमुच, भारतीय समाज में दहेज की समस्या बड़े–बुजुर्गों की ही बनाई हुई है। योगेश के भारत आने पर बुजुर्गों द्वारा कन्याओं की लिस्ट दहेज, शिक्षा, रूप–रंग के आधार पर बनाई जाती है। वह मेष से मीन राशि तक लड़कियाँ देख डालता है। योगेश की तरह नौजवान ही दहेज का विरोध कर उसे जडमूल से दूर कर सकते हैं।

बेमेल विवाह की समस्या ने भी दाम्पत्य जीवन में दरारें ही पैदा की हैं। कई बार पति के नपुंसक होने या पत्नी के वन्ध्यत्व के कारण भी विवाह उपरांत जीवन सुखी नहीं रहता। उपन्यास 'तिराड़' में बलदेव की नपुंसकता पर उसकी ही हँसी उड़ाती है। कहती है: ''हें बलदेव भै, सो तो पाड़ा जेवा न बोकरा जेटलुंय जोर नथी?''[143]

(अरे बलदेवभाई, दिखते बैल जैसे हो और बकरी जितना भी जोर नहीं?)

फलतः बलदेव अपनी पत्नी की बजाय जोईती विधवा के प्रेम में पड़ जाता है। उनके दाम्पत्य में शर्म, लाचारी या शंकावश वह सुख–सम्पन्नता का अनुभव नहीं होता, जैसे कोई बेमेल विवाह किया हो।

बेमेल विवाह भी मध्यमवर्गीय समाज की भयंकर भूल सिद्ध होती है। इसके कई कारण हो सकते हैं जैसे 'नाईटमेर' उपन्यास की नायिका नियति अपने प्रेमी से विवाह न कर उसके बड़े भाई अनन्य की हो जाती है, क्योंकि बड़े बुजुर्ग ऐसा चाहते हैं।

'नाइटमेर' उपन्यास बेमेल विवाह की समस्या पर केन्द्रित सरोज पाठक का सुन्दर उपन्यास है। एक ही घर में पति और प्रेमी (दो भाईयों के बीच) रहना एक नारी के मानसिक मनोमंथन की परीक्षा यह समाज लेता है। उसे अनुशासित होकर रहना पड़ता है।

''गरीब घरनी ओशियाळी छोकरी चुपचाप वडीलोअे करेला निर्णयने माथे चडावी आ घरमां आवीने गोठवाई हती।''[144] (गरीब घर की पराधीन लड़की चुपचाप बड़े बुजुर्गो के निर्णय को मानकर इस घर में आकर व्यवस्थित हो गई थी।)

परंतु नायिका नियति दोनों भाईयों (सार्थ और अनन्य) के बीच भावुकता, हताशा को झेलती अपने स्वरूप को स्थापित करने की कोशिश करती और यह बेमेल विवाह की समस्या को हल करने के लिए जरुरी भी था।

''नियतिनां अंगे–अंगनी स्फूर्ति, चपळता, बेदरकारी तेनी आव–जामां, छतां थतो तेनो अनादर जाणे इरादापूर्वक कंईक बनी गयुं हतुं। तेनी सतत याद आपतो अने नियतिनुं मौन सार्थ, अनन्य बेयने अकळावी देतुं।''[145]

(नियति के अंग–अंग की स्फूर्ति, चपलता और बेपरवाही उसके चाल–चलन में व्यक्त होते। उसका अपमान मानों इरादेपूर्वक किया गया था, यह याद आते ही नियति का मौन, सार्थ और अनन्य दोनों को व्याकूल कर देता।)

इस प्रकार कई बार गलत निर्णय एक मानव की जिंदगी को हंचमचा देते हैं। लाचारीवश किया गया 'प्रेम' जीवन को सहजता से जीने नहीं देता।

बेमेल विवाह चाहे उम्र के अत्यंत अंतर को लेकर हो, जैसे कि नाइटमेर के अनन्य और नियति के बीच लेकर हो, जो प्रणय–त्रिकोण की उलझन में भी उलझता है, या फिर विवाह के बाद की नपुंसक व वन्ध्यत्व की स्थिति लेकर आए, दाम्पत्य जीवन की बेस्वादी ही उन सम्बन्धों में अर्थहीनता उपस्थित कर देती है।

भारतीय समाज में दहेज और बेमेल विवाह जैसी कुरीतियाँ उसके लम्बे समय से चली आ रही कमजोरी का प्रतीक हैं।

संत्रास, अलगाव बोध, निराशा, घुटन और अकेलापनः

भारतीय समाज में मध्यमवर्गीय परिवार की कुछ रुढ़ियाँ इतनी चुस्त हैं कि आधुनिक पीढ़ी के लिए यह तकलीफ बन जाती है। अपनी सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों की विषमतावश व्यक्ति कई बार संत्रास, घुटन, अकेलेपन, निराशा, हताशा और अलगाव के बोधरूपी मनोवैज्ञानिक समस्याओं से गुजरता है।

सहज प्रेम के बीच उपजी नैतिक मर्यादाएँ, मूल्य, आर्थिक मार, पारिवारिक कलह–क्लेष विधत्व अत्यधिक स्वातंत्र्यबोध जैसे अनेक कारणों ने मध्यमवर्गीय मानव को तनाव, घुटन, पीड़ा, निराशा, और अकेलेपन का बोध करवाया है।

अति महत्वाकांक्षा और अति स्वातंत्र्य से भी मानव संत्रस्त हो जाता है जैसे स्वच्छंद स्वाभिमानी अमृता दुःखी होकर अपने प्रेमी उदयन से कहती हैः

''मने रड़ती जोवा इच्छे छे? निष्ठुरताथी आक्रान्त ने नारी कदी रडती नथी। बीजाओ आपेला

दुःखथी ऐ रडती नथी, रडवा माटे अेनुं पोतानुं पूरतुं होय छे।''[146]

(मुझे रोते हुए देखने की इच्छा है? निष्ठुरता से आक्रान्त नारी कभी नहीं रोती। दूसरों के दिए दुःख से भी नारी नहीं रोती। रोने के लिए उसके अपने दुःख ही पर्याप्त हैं।)

यानी स्वच्छंदी अमृता का अपने स्वार्थवश लिया गया निर्णय (घर छोड़कर अकेले स्वच्छंद जीवन जीना और दोनों प्रेमियों से मेलजोल रखना) भी उसे दुःखी कर देता है। अर्थात् व्यक्ति अपने दुःख के लिए खुद जिम्मेदार होता है, यह बात साठोत्तरी उपन्यासों में सहज रूप से अभिव्यक्त हुई है। इसलिए 'अमृता' बार–बार दुःख और अकेलापन ही पाती है:

''स्वतंत्रता माटे संघर्षमां उतरी हती। हवे अेने स्वतंत्रता प्राप्त थई चुकी हती। अे जाणी गई छे के पोताने अभीष्ट हती ते स्वतंत्रतानो अर्थ थाय छे – निरसंग अेकलता।''[147]

(स्वतंत्रता के संघर्ष में वह चलती चली गई और अब जब उसे स्वतंत्रता मिल चुकी तो वह जान गई है कि खुद के लक्ष्य स्वतंत्रता का अर्थ है – निस्संग अकेलापन।)

उपन्यास 'बत्रीस पूतळीनी वेदना' में गंगाबाई इसलिए संत्रस्त है कि उसका पति एक के बाद एक बच्चों की लाइन लगा देता है और उसे नसबंदी ऑपरेशन नहीं करवाने देता। जिसकी सजा उसे जिंदगीभर भोगनी पड़ती है।

''गंगाबाईअे निराशाथी डोकुं धुणाव्युं – बुन, हुं नथी जाणती? मनेय मारां छोकरां वालां छे, पण ईस्पितालमां ईम ऑपरेशन नथी करता, धणीनी सही मागे छे फारममां।''[148]

(गंगाबाईने निराशा से गर्दन हिलाई – बहन, मैं नहीं जानती? मुझे भी मेरे बच्चे प्यारे हैं, पर अस्पताल में ऐसे ही ऑपरेशन नहीं करते। पति के हस्ताक्षर फॉर्म के लिए माँगते हैं।)

मानव–जीवन कई बार स्वयं तो बहुत बार मतभेद के कारण मानसिक तनाव भोगता है। और कई बार उसे सहज परिस्थितिवश भी मिलता है जैसे उपन्यास 'प्रियजन' की चारु को दिवाकर की मौत के कारण। 'मरणोत्तर' उपन्यास का नायक मृणाल भी अपने अकेलेपन से दुःखी होता है। जबकि वह कई स्त्रियों (मेघा, गोपी, नमिता, रीमा) का साहचर्य भोगता है। उसे अपनी जिंदगी नरकपूर्ण लगती है। उसकी हताशा, निराशा जीवन के गलत कार्यो में व्यक्त होती है, नमिता कहती है:

''हाश, हवे आ लोको ऊँघना सड़ेला उकरडा नीचे धरबाई गया लागे छे। अे उकरडामां क्यांक शराबना खाबोचिया छे। क्यांकथी सिगारेटनां ठूंठाओ धुमाया करे छे। अेमां काट खाई गयेला पतरांना जेवा अवाजो रही–रहीने खखड्या करे छे.''[149]

(शांति, अब ये लोग नींद के सड़े हुए कूड़े के ढेर के नीचे गड़ गये लगते हैं। इस गंदगी में शराब के डबरे हैं, और कहीं सिगारेट के जले टूकड़ों का धुँआ जल रहा है। इसमें जंग खाए पतरे जैसी आवाजें रह–रहकर आती हैं।)

कई बार सामाजिक संबंधों में अलगाव की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है। अपने ही स्वजन को न चाहने का कारण सांसारिक मायामोह और स्वार्थ ही हो सकता है। 'आगन्तुक' का नायक ईशान इसी अलगाव का भोक्ता बनता है। जब वह संत्रास से 15 वर्ष बाद पुनः घर लौटता है तो उसकी भाभियाँ फोन पर बड़ी ही अलगाववादी बातें करती देखी जा सकती हैं। शालू भाभी कहती हैः

'ते तमे जाणो, आववुं होय तो आवो, लई जवा होय तो लई जाओ, जे करवुं होय ते करो, जेटला मारा दियेर छे, अेटला ज तारा दियेर छे।''[150]

(वह तुम जानो, आना हो तो आओ, ले जाना हो तो ले जाओ, जो करना हो वह करो। जितना मेरा देवर है, उतना ही तुम्हारा देवर है।)

यहँ तक कि अलगाव की यह स्थिति पति–पत्नी के वाक्‌युद्ध में अभिव्यक्त हो जाती हैः

''आशुतोषे पण जरा चिड़ाईने कह्युं– ''जरा सारी रीते वात करती होय तो?

आनाथी सारी रीत मने नथी आवडती। अने हवे आ उंमरे मारे शीखवी पण नथी। तमने ना गमतुं होय तो हवेथी शालुना फोन तमे ज लेजो।''[151]

(आशुतोषने भी जरा चिढ़कर कहा – जरा ठीक ढंग से बात करती तो?

इससे अच्छा तरीका मुझे नहीं आता और अब इस उम्र में मुझे सीखना भी नहीं है। तुम्हें अच्छा नहीं लगता हो तो अब आगे से शालु का फोन तुम ही ले लेना।)

सरोज पाठक के 'नाइटमेर' का पात्र अनन्य सोना से दुःखी होकर कहता हैः

''मने अेम के त्रणेक मास जरा स्थळ फेर थाय, घणा वखतथी बहार निकळायुं ज नथी, अेक नी अेक रीते जीववानो थाक लाग्यो छे।''[152]

और सोना कहती हैः

''वात तो तारी साची छे। आपणे मध्यमवर्गना माणसो हवा खावानां स्थळे के सगां–व्हालांने घेर महिनो मास स्थळफेर जई शकीअे नहीं, अने आजकाल माणस माणसनी सगाई पण अेवी थई गई छे के...।''[153]

(मुझे ऐसा लगता है कि तीनेक महीने जरा स्थल फेर हो, बहुत समय से बाहर जाना हुआ नहीं, एक ही तरह से जीवन जीने से थकान लगी है।

बात तो तुम्हारी सही है। हम मध्यमवर्गीय मनुष्य हवा खाने के बहाने घूमने या सगे–संबंधियों के घर महीनेभर स्थलफेर करने नहीं जा पाते। और आजकल तो मनुष्य–मनुष्य का संबंध भी ऐसा हो गया है कि....)

इसी तरह संत्रस्त 'अमृता' भी अपनी परिस्थितियों से उबकर कहती है:

''पोतानुं समग्र दायित्व स्वीकारीने जीवुं छुं अने स्वाधीनता अनुभवी रही छुं। अेवी खुमारीमां अेकलतानुं दुःख सही रही छुं।''[154]

(अपने सारे दायित्व स्वीकार करके जी रही हु और स्वाधीनता का अनुभव कर रही हूँ। इसी नशे में अकेलेपन का दुःख सह रही हूँ।)

कहने का तात्पर्य यह है कि साठोत्तरी उपन्यास मानवजीवन के आत्ममंथन, आत्मपीड़न को सफल रूप से अभिव्यक्त करते हैं। मनुष्य का मध्यमवर्गीय समाज अपनी किसी भी स्थिति के मद्देनजर खुश नहीं है। अकेला है तो दुःखी है, निराश है और परिवार के साथ है तो फिर झगड़े हैं, झंझट है। मानव की यही विवशता, एकाकीपन, घुटन क्या उसकी आधुनिक पहचान है? इसलिए 'अमृता' उपन्यास का तृतीय भाग 'गांधी' की उक्ति के साथ आरंभ होता है: ''मनुष्य ज्यां लगी स्वेच्छाअे पोताने सहुथी छेल्लो न मूके त्यां लगी अेनी मुक्ति नथी।''[155] (मो.क.गांधी)

(मनुष्य जब तक स्वेच्छा से अपने आप को अंतिम न रखे, तब तक उसकी मुक्ति नहीं है। – मो. क. गांधी)

नारी मुक्तिः

नारी मुक्ति का प्रश्न साहित्य विमर्श को आधुनिक समस्या से जोड़ता है। नारी की छवि मध्यमवर्गीय परिवारों में अकसर एक जमे जमाए चौखटे जैसी रही है, जबकि वास्तव में नारी और पुरुष अस्मिता एक सामाजिक संरचना है। पारिवारिक समीकरण के कारण मनोविज्ञान, व्यवहार और स्वयं उसकी छवि के कारण नारी एक 'चौखटे' (फ्रेम) जैसी पहचान ही बन पाई है। इसके अतिरिक्त वह 'वीकर सेक्स' और 'सेकिण्ड सेक्स' के तौर पर भी अभिव्यक्त होती है। अतः आरंभ से अंत तक उसकी 'भोग्या' पहचान ही अभिव्यक्त हुई। और यही कारण है कि नारी आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक, मानसिक और यौन–उत्पीड़न की शिकार होती है। अब उसे 'मुक्ति' चाहिए।

'गुजराती नवलकथाना मानकनो विस्तार' शीर्षक लेख में चन्द्रकान्त टोपीवाला कहते हैं:

''नारीवादनी संरक्षक, उदार उग्र के क्रांतिकारी या जेहादी अेवी अनेक अर्थच्छायाओ वच्चे देरिदा, लूकां, फूको आफेली जात (Subject) अंगेनी नवी आलेख संदर्भ सदीओ जूना पुरुषसत्ताक विचार अने सत्तानां माळखां सामे पडकार आव्यो... सीमाँ द बुवाअे साररूपी उच्चारेलुं, के नारी जन्मती नथी, नारी बने छे। One is not born but becomes a women. अने तेथी नारी पुरुष, घर अने संतानोनी लीलानी पार नीकळी अेनी पोतानी ओळख आगळ वधी।''[156]

(नारीवाद की संरक्षक, उदार या कट्टर, क्रांतिकारी या जेहादी, ऐसी अनेक अर्थछायाओं के बीच देरिदा, लूका, फूको द्वारा दी गई विषयक नयी जानकारी अस्तित्व के संदर्भ में पुराने पुरुषसत्तात्मक विचार और सत्ता समक्ष ललकार के स्वर उठे। ..... सी में द बुवा ने साररूप में उच्चरित किया है कि नारी जन्म नहीं लेती, नारी बनती है। One is not born but becomes a woman. इसलिए नारी पुरुष के घर में और संतानों की रसलीला को पार करके अपनी स्वयं की पहचान के लिए आगे बढ़ी है।)

सचमुच 'नारीवाद' ने नारी के संदर्भ में अनेक प्रश्नचिन्ह लगाए हैं। उसे मानव होने का हक मिले, यह वह चाहती है। गुजराती समाज के परिवेश में हम साठोत्तरी उपन्यास की नारी को स्वच्छंद-स्वतंत्र रूप में जीते हुए पाते हैं। वैसे भी गुजरात की नारी को 'बोल्ड' माना जाता है। जो आधी रात को भी गाड़ी चलाकर बेधड़क आ-जा सकती है।

इला मेहता की 'बत्रीस पुतळीनी वेदना' नारीवाद पर आधारित सामाजिक उपन्यास है। उसमें शास्त्रीजी ने भारतीय नारी के आदर्श त्याग, तप और समर्पण बताए हैं। परंतु नाटक के लिए उपस्थित सभी नारियाँ उनको विरोध प्रदर्शित करती हैं:

''शास्त्रीजीना छेल्ला वाक्ये अेमनी अनुयायी नारीओनां मुख खीली उठ्यां, मात्र पेलां वृद्ध सन्नारी धीरे-धीरे बोल्यां, बधुं बहु जूनुं थई गयुं छे। साव जुनुं। हवे नवुं करावो।''[157]

(शास्त्री के अंतिम वाक्य सुनकर अनुयायी नारियों का मुख खिल गया, मात्र वह वृद्ध समान नारी धीरे-धीरे बोली – ये सब बातें अब पुरानी हो गई हैं, एकदम पुरानी। अब कुछ नया कराओ।)

कई बार स्वयं नारी नारी के लिए उसकी पीछेहठ का कारण बनती है। छाया को अपनी माँ की कही बात याद आती है:

''मा कहेती, दीकरीनी जातने वळी मोंमाथे अख्खरेय न नीकळवो जोईए।''[158] या

''छाया, जरा ओछो अवाज कर।''[159]

(माँ कहती, बेटी की जात के मुँह से अधिकार की बात नहीं निकलनी चाहिए। या

छाया, जरा आवाज़ धीमी कर।)

उपन्यास में नायिका छाया को 'स्त्रीधर्म' की पुस्तक दी जाती है, जिसमें स्त्री का परंपरित चित्र इस प्रकार प्रस्तुत हैः

''स्त्रीअे पतिनो मूड़ जोई वात करवी, पतिने प्रेमथी पीरसवुं, गुस्सो करे तो गळी जवुं, वगेरे। लग्न जीवनमां पुरुषनी जे अपेक्षाओ होय तेने संतोषवी। छायानी अपेक्षाओ माटे कोईअे पूछ्युं नहोतुं।''[160]

(स्त्री को पति का मूड़ देखकर बात करनी चाहिए, पति को प्रेम से परोसना चाहिए, गुस्सा करे तो सहन कर जाना चाहिए, वगैरह। विवाह–जीवन में पुरुष की जो अपेक्षाएँ हों उसे तृप्त करना चाहिए, छाया की अपेक्षाओं के बारे में किसी ने नहीं पूछा था।)

यही नहीं, इस पूरे उपन्यास में स्त्री की छवि पर 'नाटक' रचा जाता है और 'स्त्रीमुक्ति' की कामना से भी रहित होकर वह कह उठती हैः

''अमारी प्रेमनी सृष्टिनी खोज अमारे अेक मानवी बनीने करवी छे। अेक अेवो मानव जेना विकासनी बधी दिशाओ मोकळी छे। न देवी, न राक्षसी, अमने मात्र स्त्री रहेवा दो।''[161]

(हमारे प्रेम की सृष्टि की खोज हमें एक मानव बनकर करनी है। एक ऐसा मानव जिसके विकास की सारी दिशाएँ खुली हों। न देवी, न राक्षसी, हमें मात्र स्त्री रहने दो।)

प्रश्न उठता है, कि नारी स्वतंत्रता आखिर कितनी? कहाँ तक? साठोत्तरी गुजराती उपन्यासों में ये प्रश्न बड़ी बारीकी से उपस्थित हुए हैं। रघुवीर चौधरी का 'अमृता' उपन्यास नारी की स्वतंत्रता पर केन्द्रित उपन्यास होने के बावजूद व्यक्ति स्वातंत्र्य (स्त्री–पुरुष) पर तीक्ष्ण दृष्टि डालता है। वहाँ नायक अनिकेत के बारे में सोचकर अमृता कहती हैः ''अेक प्रश्न अेना मनमां घोळाया करतो हतो, शुं पुरुष अने स्त्री माटे स्वातंत्र्यनो अर्थ अेक नथी?''[162]

(एक प्रश्न उसके मन में घुल रहा था, क्या पुरुष और स्त्री के लिए स्वतंत्रता का अर्थ एक ही नहीं?)

उदयन से अमृता अपने साहस और क्षमता का बखान करते हुए स्वाभिमानपूर्वक कहती हैः ''कोई वार आघातथी अे चीस नहीं पाडे, तने हजु अेना सामर्थ्यनी खबर नथी।''[163] (किसी भयानक आघात से वह चीखेगी नहीं। तुम्हें अभी तक उसके सामर्थ्य का पता नहीं।)

और इसीलिए अमृता अपने पहले प्रेमी उदयन से निर्भीक रूप से अपने प्रेम का इजहार अनिकेत के लिए कर देती हैः ''जो, आँखो फोड़ीने जोइ ले, स्पष्ट शब्दोमां सांभळी ले के हुं अनिकेतने चाहुं छुं, अनिकेतने ज, तने नहीं।''[164]

(देख, आँखे फाड़कर देख ले कि मैं अनिकेत को चाहती हूँ, अनिकेत को ही, तुम्हें नहीं।)

वीनेश अंताणी के उपन्यास 'प्रियजन' में भी नायिका चारू अपने दाम्पत्य संवादों में नारी चेतना के वक्तव्य प्रस्तुत करती हैः

''आई हेट डॉक्टर्स... दिवाकरे वात उड़ाववानो प्रयत्न कर्यो।

पण हुं तो डॉक्टर नथी ने? तमे मने पण धिक्कारो छो।

में अेवुं क्यां कह्युं?

तो पछी मारी वात मानता केम नथी?''[165]

(आई हेट डॉक्टरर्स... दिवाकर ने बात को उड़ाने का प्रयत्न किया।

पर मैं तो डॉक्टर नहीं न? तुम मुझे भी धिक्कारते हो?

मैंने ऐसा कब कहा?

तो फिर मेरी बात मानते क्यों नहीं?)

नारी के प्रति अभी भी परंपरागत फार्मूला बदला नहीं है। इसलिए नए उपन्यासों में भी नारीवादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त होता है। मधुराय के चर्चित उपन्यास 'किम्बल रेवन्सवूड' का नायक योगेश अपनी कन्यापसंदगी के दौरान विचार करता हैः

''छोकरीओमां बार वेराइटी आवे छे। छोकरी अेटले शुं? कापड़, फर्निचर, डिनर सेट, मीठाई? छोकरी पसंद करवा निकळानुं होय त्यारे जीवन साथे वितावावानुं छे, एवी लागणीथी निकळवानुं होय के आम लुक–बुक–कुकनी फार्मूला लईने नीकळवानुं होय?''[166]

(लड़कियों में बारह वैराइटी आती है। लड़की यानी क्या? कपड़ा, फर्निचर, डिनर सेट, मिठाई? लड़की पसंद करने निकलना हो तो उसके साथ जीवन बिताना है ऐसी भावुक मिठास के साथ निकलना चाहिए या इस तरह लुक–बुक और कुक की फार्मूलाबद्ध पद्धति के साथ निकलना चाहिए?)

आज के नौजवान लुक (रूप–रंग), बुक (पढ़ी–लिखी) और कुक (कुशल गृहिणी) में तीन

पद्धतियों का फार्मूला लेकर ही लड़की पसन्द करते हैं। इस बात पर मधुराय ने योगेश के विचारों द्वारा व्यंग्य प्रस्तुत किया है।

मधुराय के ही 'कामिनी' उपन्यास में नायक पाठक कामिनी से कहता हैः ''कामिनी, तुं मारी संपत्ति छे, तारी ईरानीनी आँखो मारी छे,.... कामिनी, तुं मारी छे, हुं कामिनीनो गुलाम, नोकर, चाकर।''[167]

(कामिनी, तू मेरी संपत्ति है। तेरी ईरानी आँखें मेरी हैं,... कामिनी तू मेरी है, मैं कामिनी का गुलाम, नौकर, चाकर।'')

वस्तुतः साठोत्तरी गुजराती उपन्यासों में नारी मुक्ति का प्रश्न आज भी यथावत उठता है। चाहे नारी कितनी भी स्वतंत्रता प्राप्त कर ले, उसका भोग्या रूप प्रश्नचिन्ह बना बार-बार उपन्यासों में चित्रित हो रहा है।

प्रेम और यौन समस्याः

भारतीय समाज में नैतिक सांस्कृतिक ह्रास के कारण मध्यमवर्गीय समाज में प्रेम और यौन समस्याएँ सबसे अधिक फैलीं, ऐसा रुढ़िवादी, परंपरावादी लोगों का मानना रहा है। यों देखा जाए तो नर और नारी का पारस्परिक आकर्षण केवल संतानोत्पत्ति के लिए ही नहीं, वरन् कला और साहित्य की प्रेरणा का भी स्त्रोत रहा है। खजुराहो के शिल्प इसका प्रमाणे हैं, परंतु अधिकांश लोग इस मूल बात को न समझकर स्वरूप-दृष्टिकोण नहीं अपना पाए। फलतः अस्पष्ट भय और नैतिकता के कारण समाज में प्रेम और यौन-उत्पीड़न जैसी समस्याएँ खड़ी हुईं, जिसके कारण समाज में उच्छृंखलता फैल जाने का खतरा बना हुआ है।

प्रेम की उच्छृंखलता अविवाहित युवक-युवति के बीच 'अमृता' उपन्यास में इस प्रकार प्रकट हुई हैः

''समुद्रना छल्लाता मोजामां आगळ वधी रही हतो त्यारे पीठने थई जतो अमृताना स्कंधनो स्पर्श.... एना वक्षनो स्पर्श अनिकेतने याद आवी गयो, पोतानी पीठ साथे जोडायेली सृष्टिने भूलीने तर्या करवुं, दोह्यलुं लागतुं हतुं ते याद आव्युं।''[168]

(समुद्र की छलछलाती मौजों आगे बढ़ रहा था तब पीठ को होनेवाला अमृता के स्कंध का स्पर्श... उसके वक्ष का स्पर्श, अनिकेत को याद आ गया। अपनी पीठ से जुड़ी सृष्टि को भूलकर तैरते रहना, मुश्किल लगता था, वह सब याद आ गया।)

'प्रेम' की सहज और स्वाभाविक अनुभूति तो ठीक, साठोत्तरी उपन्यासों में अभिव्यक्त भी हुई, परंतु 'कामिनी' उपन्यास का नायक तो प्रेम की एकनिष्ठता पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। जगन्नाथ महाशंकर पाठक कहता हैः

''प्रेम! प्रेम करवानी उंमर शुं माणसनी? ... उत्क्रांतिना क्रेमे माणसमांथी अेने अेवुं प्राणी बनावी मूक्यो छे, जे प्रेम करी न शके? करे तो अेक ज पात्रमां समावी न शके, अेनी कृपणता सच्चाई भरेलो प्रेम, पूरेपूरो आपी देवामां अचकाय...?''[169]

(प्रेम! प्रेम करने की मनुष्य की उम्र क्या?... उत्क्रांति के क्रमानुसार मनुष्य ऐसा प्राणी बन गया है, जो प्रेम कर ही नहीं सकता? करे तो एक ही पात्र में वह समा नहीं सकता, कंजूसी के कारण वह सच्चाई भरा प्रेम समग्र रूप से देने में हिचकिचाता है।)

'कामिनी' उपन्यास में प्रेम और यौन–समस्या का विकृत रूप तरह–तरह से व्यक्त हुआ है और यौन जैसे नर–नारी के लिए उपहास बन जाता है। कामिनी और पाठक के प्रणय संबंध पर नयना और पाठक इसे उपहास का विषय बनाते हैं। नयना कहती हैः ''मारे मन बंने घेलसफ्फां प्राणी छे, पेलो आठ–आठ वर्षथी अेने ओळखे छे, पण हजी गीतडां ज गावाना मूड़मां छे अने आ भूंडणनी जेम पाछळ–पाछळ फर्या करे छे।''[170]

(मेरे अनुसार दोनों बावले प्राणी हैं। वह आठ–आठ वर्षो से उसे जानता है, पर अभी भी गीत ही गाने के मूड़ में है और ये सूअर की तरह उसके पीछे–पीछे घूमती है।)

यों उपन्यास में सुन्दर प्रेम की परिभाषा बताता हैः ''कोईने जोईने मन नाची उठे, कोईनी याद मीठी लागे, कोईनो हाथ पकड़ता रुँवाड़ा ऊभा थई जाय, अेनुं नाम प्रेम।''[171]

(किसी को देखकर मन नाच उठे, किसी की याद मीठी लगे, किसी का हाथ पकड़ते ही रोंगटे खड़े हो जाएँ, उसी का नाम प्रेम।)

'मरणोत्तर' उपन्यास में यौन–स्वच्छंदता के कई चित्र खुलकर प्रस्तुत हुए हैं। सुधीर बहुत समय बाद मेघा से मिलता है पर उसकी यौन–कुंठा मिलते ही प्रकट हो जाती हैः

''सुधीर अधीराईथी अेने बाहुपाशमां लईने भींसे छे। सुधीरना अंग साथे जकड़ायेली उत्तप्त उच्छिष्ट हवानो स्पर्श मेघाने अकळावे छे।''[172]

(सुधीर अधीरतापूर्वक उसे बाहुपाश में भींचता है। सुधीर के अंगों मे जकड़ी व्यग्र–उच्छिष्ट हवा का स्पर्श मेघा को व्याकुल करता है।)

कई बार मर्यादा के नैतिक बंधनों के कारण प्रेम और यौन प्रश्नचिन्ह ही बनकर रह जाता है। जैसे 'प्रियजन' उपन्यास में इस कारण 'पत्नी' और 'प्रेयसी' दोनों के प्रति नायक संशयात्मक स्थिति ही जी

पाता है। निकेत सोचता हैः ''... विश्वविस्तारनी अनंतमां अे कोई जग्याअे सदेहे हती छतां उमानी हाजरीने लीधे बीजी व्यक्ति हती। अत्यारे। चारू साथे बेठो छे त्यारे पोतानी पत्नी बीजी व्यक्ति बनी गई।''[173]

(.... विश्व विस्तार के अनंत में किसी जगह वह सशरीर उपस्थिति थी, उसके बावजूद उमा की उपस्थिति में वह दूसरी व्यक्ति थी। अभी चारू के साथ बैठा है तब उसकी अपनी पत्नी दूसरी व्यक्ति बन गई।)

मधुराय के 'किम्बल रेवन्सवूड' में नौजवान मित्रों में प्रेम और यौन की खुली चर्चाएँ होती हैं। योगेश विशाखा से पूछता हैः

''तमने केवो छोकरो गमे छे?''

''हें?''

बन्ने थोड़ो समय चूप रह्या, खूब विचार करी विशाखाअे कह्युंः

''तमने खराब न लागे तो कहुं''

''नो... नो.. फॉर्मालिटी''

''साव साचुं कहुं तो सेक्सी छोकरो गमे।''[174]

(तुम्हें कैसा लडका अच्छा लगता है?

हें?

दोनों थोड़े समय चूप रहे, खूब विचार कर विशाखाने कहाः

तुम्हें खराब न लगे तो कहुँ?

नो... नो... फोर्मालिटी।

सीधा सच कहुँ ते सेक्सी लड़का अच्छा लगता है।)

'नाइटमेर' उपन्यास में इसीलिए परेश अपनी मित्र नियति से भारतीय विवाह व्यवस्था पर व्यंग्य करता है और यही परेश सोहणी से 'कॉन्टैक्ट मैरिज' व्यवस्था की बात करता है। उसका मानना है कि प्रेम और यौन की समस्या इसीलिए पैदा हुई है। वह कहता हैः

''आ शुं सालुं आपणी इन्डियन मेरेज सिस्टमनुं नोनसेंस। अेक वार अग्निनी साक्षीअे कोई रामजीभाई, सुरेशभाई, सात्विकभाई कोई रोहिणीबहेन, कुमुदबहेन, चंद्रिकाबहेननो हाथ पकड्यो, बस थई गयुं.... चारे चार आश्रम... कया कया, माय गुडनेस, नियति बहेन।''[175]

बाद में यही परेश सोहनी से विदेशी कांट्रैक्ट मेरेज की व्यवस्था की तारीफ करता है–

''मारी कान्ट्रैक्ट मेरेजवाली वात हुं जाहेर करी दउं ने बधां छू थई जाय... कॉन्ट्रेक्सी, के न फावे ते दिवसे छूटा, फावे तो कॉन्ट्रेक्ट रीन्यू करावी लेवो।''[176]

(मेरी कॉन्ट्रेक्ट मैरेजवाली बात मैं जाहिर कर दूँ, तो सब गायब हो जाएँ... कॉन्ट्रैक्सी रास न आए तो उसी दिन अलग और रास आए तो कॉन्ट्रैक्ट फिर रिन्यू करा लो।)

प्रेम और यौन की समस्या ने नारी की स्थिति दयनीय बना दी। एक पुरुष अनेक नारियों को भोगने की इच्छा रखता है, स्वयं 'कल्पतरु' उपन्यास का नायक किरण कामदार अनेक स्त्रियों को भोगता हैः

''पोतानी कामवाळी फ्लोराने भोगवे छे, सहकर्मी डेविडा ने तो अेना कारणे संतान थयुं छे। बीजी सहकर्मी मार्या अेना द्वारा संतान झंखे छे। कविता जेवी अेरहॉस्टेसने जोतां ज आँखो बंद करी अेना बदननी कामना करी मनोमन अेनां वस्त्रो दूर करे छे। पोताना मित्रनी सहायक लक्ष्मीने मळतां अेनी आंखो लक्ष्मीना वस्त्रोनी आरपार जोती हती।''[177]

(अपनी कामवाली फ्लारो को भोगता है, सहकर्मी डेविडा को इसी के कारण संतान हुई है। दूसरी सहकर्मी मार्या इससे संतान पाने की इच्छा रखती है। कविता जैसी एयरहोस्टेस को देखते ही यह आँखें बंद कर उसके बदन को पाने की कामना करता है और मन ही मन इसके वस्त्रों को उतारता है। अपनी मित्र की सहायक लक्ष्मी को मिलते ही इसकी आँखें लक्ष्मी के वस्त्रों के आर–पार देखती थीं।)

किशोर जादव के उपन्यास 'निशाचक्र' में नायक कामुक और जातीय तीव्रता को अनुभूत करता है :

''आस्ते आस्ते आखुं तन ढीलुं थई जतां, क्यांक सांकडुं बादुं शोधीने मारामांथे अेक करचलो बहार नीकळ्यो, लसर्यो ने भोंयभेगो उंडाणमां उतर्यो।''[178]

(आहिस्ता–आहिस्ता सारा शरीर ढीला होता जाता, कहीं संकरा दरवाजा ढूँढकर मुझमें से एक केकड़ा (या देह की झुर्री) बाहर निकला, फिसला और गहराई में उतरा।)

इस प्रकार साठोत्तरी उपन्यासों में हम पाते हैं कि स्त्री पुरुष का जीवन दृष्टिकोण मात्र भोग्या रूप तक सीमित होकर रह जाता है। स्वच्छंद यौनाचार से नारी पुरुष की, पुरुष नारी का गुलाम होकर रह जाता है। अतः स्वस्थ समाज के निर्माण में प्रेम और यौन समस्या एक विचारणीय प्रश्नचिन्ह है।

तलाक समस्याः

'विवाह व्यवस्था' समाज की सुव्यवस्था के लिए बनाई गई, आखिर उसमें दरार या तलाक होने की क्या वजह हुई? तलाक समस्या मध्यमवर्गीय समाज को पुनः पुनः सोचने पर विवश करती है। दाम्पत्य मन–मुटाव, दहेज, वैचारिक मतभेद, किसी तीसरे व्यक्ति का दाम्पत्य युगल जीवन में प्रवेश, व्यक्ति–स्वच्छंदता की भावना आदि ऐसे अनेक कारणों से पति–पत्नी का कानूनन संबंध–विच्छेत हो जाता है। तलाक की इन स्थितियों के कारण मध्यमवर्गीय परिवार काफी प्रभावित हुए हैं।

उपन्यास 'नाइटमेर' की नायिका 'नियति' बड़ी अनुशासनप्रिय, पतिव्रता और बुद्धिमान है, वह सोहणी से तलाकशुदा व्यक्ति के चरित्र पर विश्लेषण करते हुए अपनी समझ का प्रमाण देती है और अनन्य के साथ बेमेल विवाह हो जाने पर उसे तलाक न देकर अपने जीवन से समझौता कर लेती है। वह कहती हैः

''भई, जमानानो रंग कोने न लागे? आपणा समाजनुं बंधारण अने शहेरनी रहेणी–करणी ज एवी छे के एमां स्त्री पुरुषोने हळवा–मळवानुं थाय ज, गमे ते कशुं धारी लई बंनेमांथी जे कोई दुःखी थाय के इर्ष्या करे.. के छूटाछेड़ा ले तो खुद ज दयापात्र छे। मारे एवा दयापात्र बनवानुं न पोसाय, समझी।''[179]

तलाक एक ऐसी कुरीति है जो व्यक्ति के जीवन में अबीजोगरीब मोड़ों से गुजरते हुए मानसिक उलझनें व समस्याएँ पैदा कर देती हैं। चन्द्रकांत बाबूभाई आनंद बख्शी के 'जातककथा' उपन्यास का नायक गौतम का मित्र बाबुभाई आनंद विषम परिस्थितियों से गुजरता हिचकोले खाता रहता है। वह अपनी पत्नी से तलाक लेकर अपनी पुत्री से भी दूर हो जाता है, और आशना उर्फ अशोका प्रियदर्शी के साथ गुनाहखोरी में शामिल हो जाता है। आखिर अपने तो अपने होते हैं। पत्नी के साथ अपनी पुत्री को खो देने का दर्द बाबुभाई आनंद को सालता रहता है। आखिरकार अंत में उसे अपने मित्र गौतम और आशना के साथ हिमालय में बोधिसत्व पाने के लिए जाने का विचार आता है।

उपन्यास 'मिश्र लोही' में नायिका अणिमा के तलाक का कारण नीग्रो पति 'बॉक' की ड्रग्स आदत, बेकारी, आलस्य और पत्नी के प्रति उदासीनता है। जबकि अणिमा ने उससे पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाववश 'प्रेम विवाह' किया है। विदेश में स्वच्छंद–व्यवहारी अणिमा ने एक तो अपने मम्मी–पापा को अंधेरे में रखकर विदेश में ही शादी रचा ली। ग्रेजुएट होने के बाद अणिमा को 'मेक्डोनल्ड अेरोनॉटिक्स' जैसे विख्यात कंपनी में अच्छी आय की नौकरी भी मिल गई, परंतु पति 'बॉक' उसी पर आश्रित था, अतः आर्थिक विषमता में आ गई। अणिमा को आखिर अपने पति से 'तलाक' लेने का निर्णय करना पड़ा, क्योंकि

वैसे भी ब्राक ड्रग–सेवन करने लगा था। अणिमा को अपनी सहेली ऍलिस की बात याद आईः ''लव व्याईल यू लव ऍन्ड हेट व्याईल यू हेट – ऍ ज जाणे के तेनो जीवनमंत्र छे।''[180] (लव व्याईल यू लव एण्ड हेट व्याईल यू हेट – यही जैसे उसका जीवनमंत्र है।)

आज की नगरीय सभ्यता और बढ़ती भौतिकृऔद्योगिकता, उन्नति ने मानव मन की संवेदनाओं को सोंख लिया है, तभी दो दाम्पत्य का प्रेम फलने–फूलने की बजाय कुम्हलाने लगता है। उपन्यास की नायिका अणिमा जैसी कई युवतियाँ हैं जो आज वैचारिक मतभेदों या पति की विषम आदतों का भोग बनती हैं और कभी वह स्थिति स्वयं उसी के हाथों तय की हुई होती हैं। यदि अणिमा भारतीय संस्कारों को पोषती तो वह अपनी शैक्षणिक उन्नति व व्यावसायिक उन्नति के साथ भारतीय युवक के साथ भी विवाह कर सकती थी, तब शायद तलाक की नौबत न आती।

प्रेम और विवाहेत्तर संबंधः

परंपरित भारतीय जीवन व्यवस्था के अभाव ने मानव जीवन में कई आपदाएँ शुरु कीं। मूल्यहीनता की स्थिति के कारण सहज प्रेम की कमी और कामातुरता के लोभवश 'विवाहेत्तर संबंध' के किस्से बहुत बढ़े हैं।

'प्रियजन' उपन्यास की नायिका चारु अपने पुराने प्रेमी निकेत को विस्मृत नहीं कर पाती और पति दिवाकर की मृत्यु उपरांत निकेत के साथ चार दिन तक आत्मीय–वार्तालाप और मनोमंथन के क्षण गुजारती है। वह निकेत से कहती हैः ''साथे जीव्या होत तो ऍ घटना रूपे आपणी साथे रही होत, हवे घटनाओ मात्र वातोना रूपोमां ज बने छे, आपणा वच्चे....''[181]

और नायक पात्र निकेत भी चारु से अपने इन आत्मीय–क्षणों में कहता हैः

''मनना अगोचर खूणाओमां केवी–केवी घटनाओ बनती रही छे। गई रात्रे तुं फरजियात पाईप पिवडावी, तमाकुनी सुगंधमां दिवाकरने अनुभववा मथती रही अने हवे वार वधीऍ ज दिवाकरनां पगलांनो आभास थाय अने डरी जाय।''[182]

(साथ जीये होते तो ये घटना स्वरूप हमारी साथ होती, अब घटनाएँ तो मात्र बातों के रूप में ही बनती हैं, हमारे बीच...)

(मन के अगोचर कोने में कैसी–कैसी घटनाएँ बनती रहती हैं। पिछली रात तुमने जबरदस्ती पाईप

पिलाई, तंबाकु की सुगंध में दिवाकर के अनुभव को महसूस करती रही और अब कुछ देर में ही दिवाकर के कदमों का आभास होते ही डर जाती हो।)

अपने विवाहेत्तर संबंध को चारु अपने आनेवाले बेटे और बहू से भी छुपाना चाहती है क्योंकि वह निकेत का परिचय उनसे 'क्या?' संबंध बताकर कराएगी, इसीलिए चार दिन रुककर निकेत चारु के घर से चला जाता है। प्रेम की द्वैतता में 'चारु' अपने पति दिवाकर और प्रेमी निकेत को एकरूप ही महसूस करती है, तभी तो स्टेशन पर वह निकेत से कहती है: ''तुं जाय छे ने निकेत, अेटले अंदर अेवुं लागे छे के जाणे दिवाकर आजे बीजी वार मृत्यु पामी रहा छे।''[1183](तुम जा रहे हो निकेत, इसलिए अंदर ऐसा लग रहा है जैसे दिवाकर आज दूसरी बार मृत्यु को प्राप्त कर रहे हैं।)

'प्रियजन' विवाहेत्तर संबंध पर आधारित एक संवेदनशील मार्मिक उपन्यास है।

'ऊर्ध्वमूल' उपन्यास की नायिका पात्रा क्षमा की मम्मी 'माया' का संबंध 'सागर अंकल' के साथ है इसका मुख्य कारण यह है कि पूर्वजन्म के प्रियजन सागर के साथ विवाह न कर पाने वाली यह नारी अपने पति के मानसिक, शारीरिक अत्याचार को सहकर भी निभाती है। उसका पति इसलिए शंकाशील है क्योंकि वह मानता है कि क्षमा उसकी बेटी नहीं बल्कि सागर की बेटी है। इसलिए वह अपनी पत्नी को खुलेआम चाबुक से मारकर अपनी अतृप्त काम वासनाएँ प्रकट करता है।

वात्सल्य से भरे सागर अंकल क्षमा के लिए अक्सर चॉकलेट, पुस्तक फूल आदि लाते। क्षमा को लगता– ''सागर अंकल मारा पप्पा होय तो केवुं सारुं... पप्पा घरमां न होय त्यारे मम्मी अने सागरकाका उपरना ओरडामां जईने बेसतां। मने घणुं खरुं कईं समजावीने नीचे मोकली देतां, क्यारेक तेओनी पासे बेसवा देतां... सागर काका आग्रहक करता तो मम्मी कवचित् गीत गाती... मम्मीअे क्यारेय पप्पा पासे गीत गायुं न हतुं।''[184]

(सागर अंकल मेरे पापा हों तो कितना अच्छा... पापा घर में नहीं होते तब मम्मी और सागरकाका ऊपर बरामदे में जाकर बैठते। मुझे बहुत कुछ समझा–बुझाकर नीचे भिजवा देते और कभी अपने पास भी बैठने देते... सागर काका आग्रह करते तो कभी मम्मी गीत भी गाकर सुनाती... मम्मीने पापा को कभी गीत नहीं सुनाया था।)

विवाहेत्तर संबंध की उलझन में उलझी 'नाइटमेर' की कथा नायिका 'नियति' को तो यह भी याद नहीं रहता कि प्रेम के मनोमंथनमयी क्षणों में उसने किसो फोन लगाया। मानसिक उथल–पुथल के बीच वह सोचती है:

''तेणे कयो नंबर डायल कर्यो हतो? कोने टेलीफोन कर्यो हतो? हवे कोनो अवाज संभळाशे? कोण.. कोण हशे अे? अनन्य के सार्थ? अनन्य के सार्थ?''[185]

(उसने कौन–सा नंबर डायल किया था? किसे फोन किया था? अब किसकी आवाज सुनाई देगी? कौन... कौन होगा वह? अनन्य या सार्थ? अनन्य या सार्थ?)

'सभा' उपन्यास की निशा भी इसी तरह अपने देवर को चाहती है, देवर 'कुमार' का प्रेम उसे उत्कृष्ट बना देता है। वह कहती–

''मने याद आवे छे, अेनुं वात वातमां लाल थई जवुं, रीसावुं, दांत पीसीने रडवुं। हा, हतो अमारे प्रेम, अने प्रेमी हता, अने मने अेनो घमंड छे, शरम नथी, समज्या?''[186]

(मुझे याद आता है, उसका बात–बात में शर्म से लाल हो जाना, रुठ जाना, दाँत पीसकर रोना। हाँ ये हमारा प्रेम था, हम प्रेमी थे और इसका मुझे घमण्ड है, शर्म नहीं, समझे?)

उपन्यास 'निशाचक्र' की नायिका 'कामसांगकोला' का विवाह उपरांत कई पुरुषों के साथ साहचर्य–संबंध है और इसी प्रकार 'रिक्तराग उपन्यास' में नायक 'मैं' का तीन–तीन स्त्रियों के साथ काम संबंध होने के बावजूद वह रिक्तराग ही बना रहता है। वह अकोला का पति था परंतु लोयन्ला और अनुरल्का को भी भोग्या के रूप में प्रयोग करता है।

इस प्रकार साठोत्तरी गुजराती उपन्यासों में विवाहेत्तर संबंध के ऐसे कई किस्से वर्णित हुए हैं, जो गुजरात प्रदेश की स्वच्छंद प्रकृति को दर्शाते हैं।

'किम्बल रेवन्सवूड' उपन्यास में इसलिए कन्यापसंदगी के दौरान अंजलि योगेश से पूछ लेती है:

''तो सपोज के आपणे... मेरेज करीअे, तो पछी तमारी अे गर्लफ्रेन्ड...''[187] (तो सपोज़ कि हम... मैरिज कर लेते हैं, तो तुम्हारी ये गर्लफ्रेन्ड?)

इस प्रकार विवाहेत्तर संबंधों से बचने की बात आज की लड़कियाँ पूछकर पहले ही स्पष्ट कर लेने में नहीं कतराती। परंतु बात फिर भी यहीं आकर समाप्त नहीं हो जाती, क्योंकि 'प्रेम' सोचकर नहीं किया जाता। ये तो संस्कार का सिंचन ही होता है कि भारतीय समाज में पत्नी को अपनाने के बाद दूसरी औरत की कामना या दूसरे व्यक्ति की कामना मन में न आए। परंतु आधुनिक स्वच्छंद विचारों ने इन सब नैतिक मूल्यों को खारिज कर दिया है और विवाहेत्तर संबंध जैसी समस्याएँ समाज में उत्तरोत्तर बढ़ती गई। साठोत्तरी गुजराती उपन्यास में वर्णित किस्से इस बात का प्रमाण हैं।

बेकारी की समस्याः

भारतीय समाज का मध्यवर्गीय समाज ढाँचा जैसे–जैसे बदलने लगा वैसे–वैसे समाज में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुईं। उनमें से एक समस्या बेकारी, बेरोजगारी की वृद्धि कारण तो है ही साथ ही मध्यमवर्गीय परिवारों से अधिक से अधिक औरतों का बाहर निकलकर नौकरी करना, या आजकल का मशीनीकरण दौर भी जिम्मेदार है। मशीन दस व्यक्ति के काम को कम समय में खुद ही कर देती है। अतः कहीं न कहीं कोई न कोई व्यक्ति (वह चाहे स्त्री हो या पुरुष) बेकारी का सामना करता ही है।

ईशान– 'आगन्तुक' उपन्यास का नायक संन्यास से लौटकर वापस आ गया है, अब वह किसके सहारे घर में रहे, क्या भाइयों के भरोसे बैठकर खाए? वह घर आता है तो उसे सबसे पहले 'काम' ढूंढना होगा, उसने घर छोड़ने से पहले सभी शैक्षिक प्रमाणपत्र फाड़ डाले थे, अब क्या करे? ट्यूशन? टाइपिंग? आखिर क्या? या फिर भाई के साथ ही कामधंधा करे? पर भाई तो उसे सीधे ही कह देता हैः

''रात–दहाड़ो महेनत करीने जमाव्यो छे, हवे तो आ धंधो मारो ज छे, मारो अेकलानो, तारोय नहीं अने ईशाननोये नहीं।''[188]

(रात–दिन मेहनत करके जमाया है। अब तो ये धंधा मेरा ही है। मेरे अकेले का, तुम्हारा भी नहीं और न ईशान का।)

बेरोजगारी की समस्या ऐसी है। पैसे–रोजगार की बात में अपने भी साथ नहीं देते। ईशान के भाई का उपरोक्त वाक्य इस बात को प्रमाणित करता है।

मधुराय के 'चहेरा' उपन्यास में दूसरे खण्ड में निषाद नौकरी के लिए भटकता हुआ बताया गया है, जिस समय बेरोजगारी के मध्यांतर वह संबंधों की संवेदनहीनता को महसूस करता है।

'मिश्र लोही' उपन्यास का नीग्रो नायक 'ब्राक' बेकारी की समस्या को झेलता है। यही नहीं, उसे तो अणिमा इसी कारणवश तलाक दे देती है जिससे उसकी जिंदगी ही अस्त–व्यस्त होकर समाप्त सी हो जाती है। अणिमा सोचती है–

''ड्रग अेडिक्ट, आळसु–बेठाडु, अभ्यास प्रत्येनी उदासीनता अने निष्काळजीने कारणे आर्थिक संकडामणमां मुकाई गयेला अने अणिमानी कमाणी पण मादक द्रव्यसेवनमां छूपी रीते वेडफी नाखता ब्राक साथे लग्न संसार निभाववाने बदले अणिमाअे लग्न विच्छेदनो विकल्प पसंद करी लीधो।''[189]

(ड्रग–एडिक्ट, आलसी–बिठाऊ, अभ्यास के प्रति उदासीनता और लापरवाहीके कारण आर्थिक

संकट में आ पड़े और अणिमा की कमाई भी मादक द्रव्यसेवन में छुपकर लूटा देनेवाले ब्राक के साथ वैवाहिक जीवन निभाने के बजाय अणिमा ने तलाक का विकल्प पसंद किया।)

यानी बेकारी की समस्या वैवाहिक जीवन में विच्छिन्नता उत्पन्न कर देती है, समाज की सबसे छोटी इकाई 'परिवार' इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

बढ़ती बेरोजगारी और साथ ही साथ बढ़ती महँगाई ने लोगों का जन–जीवन तनावयुक्त बना दिया है। सामान्य लोगों में मध्यवर्ग ही महँगाई की मार से सबसे अधिक प्रभावित होता है।

उपन्यास 'बत्रीस पूतळीनी वेदना' की उद्योगपति पत्नी रेखा के घर हुई पार्टी के दौरान इसी 'महँगाई' और 'बेरोजगारी' की चर्चा होती हैः

''गरीबोनी दया खानारांओ गरीबाईनी कल्पना सुद्धां करी शकतां न हतां, दिवसनुं अेक टंक पण खावा न पामतां रस्ते रहेता मजूरीनी शोधमां निरंतर भटकतां पेलां लाखो करोडोनो कोई अणसार सुद्धां आ सन्नारीओने नहोतो। अेकवार आ बधां ने भूलेश्वरनी चालमां लई जाय, गंधाती गटरो सूंघी–सूंघीने जीवातां रोजना दिवसो। क्यारेक मात्र रोटली छाश ने क्यांक तो मात्र चाना पाउं पर दिवस काढी नाखनार मध्यमवर्गनो बतावे तो।''[190]

(गरीबो पर दया खानेवाले गरीबी की कल्पना तक नहीं कर सकते थे। दिन का एक वक्त का खाना भी न पाकर, रास्तों पर रहते, मजदूरी की खोज में निरंतर भटकते उन लाखों–करोड़ों की कल्पना तक इन सन्नारियों को नहीं थी। एक बार यदि उन्हें भूलेश्वर की चाली (झुग्गी–झोंपडी) में ले जाएँ तो वहाँ की बदबूदार गटरों को सूँघकर कटते दिन, कभी मात्र रोटी और छाछ और कभी मात्र चाय के पाव पर ही अपना दिन गुजार देने वाले मध्यवर्गीय लोग इन्हें बतायें तो।)

वस्तुतः बेरोजगारी की समस्या मनुष्य का आर्थिक जीवन गिराकर उसे इस हद तक पहुँचा देती है जैसे वह मात्र प्राणी होकर रह गया हो। मजदूरी में भटकते लोगों को गंदी नाली के कीड़े के समान बदबूदार जीवन से तुलना करनेवाली लेखिका इला आरब महेता समाज के बहुत बड़े सच का बयान करती हैं। अशिक्षा भी बेकारी की समस्या का कारण बनती है।

साठोत्तरी हिन्दी–गुजराती उपन्यासों में मध्यमवर्गीय समस्याओं का साम्य–वैषम्यः

उपन्यास को मध्यमवर्ग का महाकाव्य कहा जाता है। यह मध्यवर्ग आगे चलकर उच्च मध्यवर्ग, सामान्य मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग में रुपांतरिक हो जाता है। समाज में इस वर्ग की भूमिका महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि समाज में इसी वर्ग की अधिकता प्रायः है। आजादी के बाद भी हम पाते हैं कि शिक्षित बौद्धिक मध्यवर्ग तेजी से उभरने लगता है। अतः साठोत्तरी उपन्यासों में इस वर्ग की समस्याएँ परिस्थितिजन्य घटनाओं के साथ चित्रित हुई हैं।

हम पाते हैं कि साठोत्तरी उपन्यास का मध्यमवर्ग भावुक है, तार्किक है और महत्वाकांक्षी भी है। जहाँ एक ओर परम्परा से मिली सांस्कृतिक विरासत है, वहीं दूसरी ओर औद्योगिक तकनीकी प्रगति से मिली बौद्धिकता है। संवेदन और वैचारिक तालमेल के संतुलन में मध्यवर्ग ने बहुत कुछ खोया और पाया है। आर्थिक प्रगति की दौड़ पर परम्परागत सामाजिक ढाँचा भी चरमराया है। अतः बढ़ती औद्योगिक भौतिक प्रगति ने मध्यमवर्ग को भीतरी स्तर पर तोड़ा भी है। उसके जीवन में अनेक समस्याएँ बढ़ती गई; कभी समाज के द्वारा तो कभी स्वयं आमंत्रित की गई समस्याएँ। हिन्दी–गुजराती साठोत्तरी उपन्यासों के केन्द्र में 'वैयक्तिक–स्वातंत्र्य' की समस्या प्रमुख है।

मार्क्सवाद–अस्तित्ववादी विचारों से प्रेरित मध्यवर्ग अपने 'अस्तित्व' के संघर्ष में अधिक जूझा है। व्यक्ति–स्वतंत्रता की समस्या रघुवीर चौधरी के गुजराती उपन्यास 'अमृता' के केंद्र में है। पात्र अनिकेत कहता हैः

''पूर्वनिश्चित आदर्शो अने उपरछल्ली आचारसंहिताओनुं आक्रमण माणसने गुंगळावी नाखे छे। बधा रुढ़िग्रस्त समाजोना जड़ चोखटामां फेंकायेलो माणस पोतानी स्वतंत्रताना हक विशे सभान थाय तो जीवी पण न शके.. आ माणस जेने जीवे छे अे जीवन छे?''[191]

(पूर्वनिर्धारित आदर्श और ऊपरी नियमबद्धता ने मनुष्य का जीवन उलझा दिया है। सभी रुढ़िग्रस्त समाज के जड़्वत चौखटे के बीच फेंक दिया गया मनुष्य अपनी स्वतंत्र पहचान के लिए जाग्रत हो जाए तो जी भी नहीं सकता... यो मनुष्य जो जीता है उसे जीवन कहते हैं?)

इसी प्रकार हिंदी उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' की नायिका सिलबिल में व्यक्ति स्वातंत्रता देखते ही बनती है। मध्यमवर्गीय परिवार की यह बेटी माँ–बाप द्वारा दिए गए नाम को त्यागकर 'वर्षा वशिष्ठ' बनती है और अपना दायित्व निभाते हुए, महत्वाकांक्षी होकर नाट्यजगत से जुड़ती है। अभावग्रस्त जिंदगी जीती

हुई वह यथार्थ–अस्तित्व पर पैनी नजर रखती है और कला व संस्कृति के झूठे नाम की धज्जियाँ उड़ाने से भी नहीं हिचकती–

''भाड़ में जाए कला और संस्कृति, वर्षा ने अपना क्रोधित स्वर सुना। कला और संस्कृति के लिए अपनी आवाज़ उठाने से पहले मैं पूछती हूँ तुम्हारी कला और संस्कृति ने मेरे लिये क्या किया? तुम्हारी कला और संस्कृति को यह चाहिए कि मुझे दिल्ली में बरसाती दिलाये।''[192]

हम देखते हैं कि जैसे–जैसे मध्यमवर्गीय परिवारों में स्वातंत्र्य चेतना विकसित होती गई, वैसे–वैसे सामाजिक बिखराव भी अधिकाधिक होता गया। घर टूटा, समाज टूटा, परिवार टूटा और यहाँ तक कि स्वयं व्यक्ति (स्त्री/पुरुष) टूटा। अकेलेपन, संत्रास को झेलते हुए मानसिक, शारीरिक, आर्थिक समस्याओं से अधिकाधिक घिरने लगा। साठोत्तरी हिन्दी–गुजराती उपन्यासकारों ने ईमानदारी से मध्यवर्ग के इस यथार्थ को पुनर्सृजित किया है। संयुक्त परिवार जो कभी मध्यमवर्ग की गरिमा का पर्याय था, वह भी परिस्थितिजन्य होकर परिवार और यहाँ तक कि स्त्री–पुरुष तनाव तलाक का रूप ले लेते हैं। और समस्या की हद पार करते हुए अकेलेपन को जीने के लिए विवश हो जाते हैं।

संयुक्त परिवार की आत्मीयता को जैसे सेंध लग जाती है। परिवार की यह टूटन स्वजनों के आत्मीय–संवेदन को सूखा देती है। 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में धिनका यमुना से कहती है–

'जबरदस्ती हमारे भण्डार घर की चाबी छीन लीन्हिन। फतहपुर के घर की मालकिन बन बैठी। .. ज्वालाप्रसाद विचरऊ पिस के कमई है और ई सण्ड–मुसण्ड चचेरभाई हुकुम के खई है''[193]

इधर यही बात हम गुजराती उपन्यास 'आगन्तुक' के संयुक्त कुटुंब में पाते हैं। जब ईशान लौटकर घर वापस आता है तो उसका भाई आशुतोष कहता है–

''तारे विचारवुं जोइए अमारी पण कई मुसीबतो होय, अमारी पण जवाबदारीओ होय, अमने फावे अेम छे के नहीं अे तारे जोवुं जोइए ने?''[194]

वास्तव में घर में आत्मीयतापूर्वक रहना, व्यवहार करना आदि नैतिक अवमूल्यन के कारण स्वजनों के लिए कठिन बनता जाता है। हर सदस्य अपना या अपने ही बच्चे का सुख चाहता है, भाई–भतीजे–बहन को इस बढ़ती महँगाई में स्वार्थवश अपने से दूर ही ठीक समझता है। तनाव की ये स्थितियाँ मात्र चाचा–ताऊ परिवारों के बीच ही नहीं, स्वयं पति–पत्नी के बीच भी बढ़ती जाती हैं क्योंकि स्वार्थ का दायरा, स्वच्छंदता का दायरा बढ़ता जो जाता है। रमेश बक्षी के उपन्यास 'बैसाखियोंवाली इमारत' में नायिका अपने

पति नवीन से कहती है– ''मैं आपको झटक नहीं सकती, इसलिए कि मेरी दृष्टि आप से अलग होकर कुछ सोचने को तैयार ही नहीं है। अन्तर केवल इतना है कि बिना कुछ सोचे समझे एक व्योम में आप चाहे जो कर गुजरना चाहते हैं।.... मैंने अब तक यदि आपका अस्वीकार किया है तो, और स्वीकार किया है तो।''[195]

मध्यमवर्गीय परिवारों में केवल आर्थिक कारण ही नहीं, कई बार मानवीय संबंध की असंतुलनता भी आत्महत्या जैसी समस्या सृजित कर देती है। जैसे कि 'रुकोगी नहीं राधिका' में राधिका एक तो अपने पिता के पुनर्विवाह को स्वीकार नहीं कर पाती, वहीं दूसरी ओर नयी माँ विद्या से भी उसका मनमेल नहीं हो पाता, परिणामस्वरूप वह आत्महत्या कर लेती है।

इसी प्रकार कई बार मानसिक असंतुलन के कारण मध्यमवर्गीय मनुष्य दूसरे व्यक्ति की हत्या तक कर डालता है। जैसे कि गुजराती उपन्यास 'कामिनी' में कामिनी अपने पूर्व प्रेमी शेखर खोसला का नाट्यमंचन के दौरान पिस्तौल से खून कर देती है।

नैतिक–मूल्यों के ह्रास का प्रदर्शन साठोत्तरी हिन्दी–गुजराती उपन्योसों में सर्वाधिक हुआ है। जीवन में मूल्यों की बात करना ही जैसे हास्यास्पद–सा हो गया है। दाम्पत्य–जीवन की नैतिक मान्यताएँ मध्यमवर्ग में सबसे ज्यादा टूटी। 'अमृत और विष' उपन्यास की पात्र बानो अपनी आबरू बेचकर आजाद जिंदगी चाहती है। 'अन्धेरे बंद कमरे' के पति–पत्नी हरबंस और नीलिमा एक–दूसरे के साथ रहकर भी एक–दूसरे से अलग हैं जैसे कि पति–पत्नी हो ही नहीं। कमोबेश यही स्थिति गुजराती उपन्यास 'कामिनी' के केशव ठाकर और उसकी पत्नी की है, क्योंकि केशव ठाकर की पत्नी सुधा 'शेखर खोसला' को चाहती है।

स्त्री–पुरुष के संबंधों में देह 'सैक्स' का नैतिक ह्रास इस हद तक है कि पुरुष नारी पर बलात्कार कर बैठता है। 'कामिनी' में प्रीतमलाल की पत्नी 'स्वाति' के संग उसका ही मित्र सुन्दर (जो कि कामिनी का भाई है) स्वाति और अनेक दूसरी लड़कियाँ.. नयना–प्रीति आदि के साथ रंगरेलियाँ मनाता है। और सुन्दर में कामभावना जल उठती है तो वह 'स्वाति' के साथ बलात्कार करता हैः

''स्वाति कंई समझे, कंई कहे, के करे अेनी पहेलां जो थवानुं हतुं ते थई गयुं हतुं... सजा फरमावशे, नरक, बधानां बारणां बंध थता नरकनी बदबू स्वातिने भरखी जशे. अने कोईनुं अेके रुंवाडुं नहि फरके, पाप पोते ज पापनी सजा छे।''[196] (स्वाति कुछ समझे, कुछ कहे या करे इससे पहले जो होना था वह हो गया था.. सजा होगी, नरक.. सब दरवाजे बंद थे। नरकरूपी बदबू स्वाति को खत्म कर देगी, किसी की रुह तक नहीं काँपी, पाप खुद पाप की सजा है।)

हिन्दी उपन्यास 'एक पति के नोट्स' का नायक अपनी पत्नी से नीरसता के कारण अन्य अनेक दूसरी नारियों का भोग करता है। वह सोचता है: ''अभी कुछ नहीं था, जो सीता के साथ होता रहा है। वह सीता के साथ ही हुआ है; सन्ध्या के साथ नहीं।''[197]

मध्यमवर्गीय समाज की संरचना कुछ इस प्रकार निर्मित हुई है कि मानव–मन अनेक उलझनों से ग्रस्त रहता है, दायित्व बोध के बावजूद अपराधबोध की स्थितियाँ जन्मती हैं, हीनभावना और कुंठाएँ जन्मती हैं।

वैधव्य का अभिशाप नारी को हताश, कुंठित और अकेलेपन का भोगी बना देता है। गुजराती उपन्यास 'प्रियजन' की चारु अपनी स्थिति को स्वीकार करके जीती है और 'भ्रम' आदि मनोरोग का कारण बनती है। उसे लगता है उसका मृत पति दिवाकर बरामदे में चक्कर लगा रहा है। यही बात 'बत्रीस पूतळीनी वेदना' की बूढ़ी विधवा औरत की है जो नायिका को अपने वैधव्य के स्वीकार की स्थिति बातचीत में बताती है।

हिन्दी उपन्यास 'गंगा मैया' में विधवा की दारूण स्थिति का चित्रांकन है– ''जिन्दगी की एक मुर्दा तस्वीर हो या जैसे एक मुर्दा जिन्दा होकर चल–फिर रहा हो।''[198]

इसी प्रकार नारी जीवन की दहेज या बेमेल विवास समस्याएँ भी हिन्दी–गुजराती दोनों प्रकार के उपन्यासों में हैं। बेमेल विवाह का कारण घर की विषम परिस्थिति या फिर बुजुर्गों का अपना निर्णय भी हो सकता है। जैसे कि गुजराती उपन्यास 'नाइटमेर' की नायिका के साथ हुआ–

''गरीब घरनी ओशियाळी छोकरी चूपचाप वडीलोअे करेला निर्णयने माथे चढ़ावी आ घरमां आवीने गोठवाई हती।''[199] (गरीब घर की पराधीन लड़की बड़े–बुजुर्गो द्वारा किए गए निर्णय को मानकर इस घर में चुपचाप ढल गई थी।)

आर्थिक विषमता ने मध्यमवर्गीय परिवारों में नारी जीवन की दहेज समस्या को विकराल बनाया है। और इसी कारण माता–पिता अनमेल–विवाह करते हुए भी नहीं कतराते। हिन्दी उपन्यास 'कितने चौराहे' में बेटी को दो बच्चों वाले बाप के साथ इसलिए ब्याह दिया जाता है कि वह परिवार गरीब है। पिता कहते हैं–

''पांच सौ नकद देगा, मुझे रुपयों की जरुरत है।''[200]

इस तरह का व्यवहार बेटी को बेच देने जैसा ही है। उसकी इच्छाओं, आकांक्षाओं की कोई स्वत्व–अनुभूति ही न हो जैसे। 'थके पांव' उपन्यास में माया विधुर डॉक्टर से विवाह की बेबसी को अपनी माँ के सामने व्यक्त करती है: ''विवाह का अर्थ है स्त्री को नरक में ढकेल देना और आप मुझे नहीं ढकेल सकते। मर जाना मैं नरक की अपेक्षा ज्यादा पसंद करुँगी।''[201]

भारतीय मध्यमवर्गीय परिवारों में एक के बाद एक समस्याएँ जैसे जुड़कर उपस्थित होती रहती हैं। कर्ता–धर्ता इस मानव ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में स्वयं को जैसे संत्रास, घुटन, अलगाव बोध, निराशा, हताशा, घुटन और अकेलेपन जैसी समस्याओं के घेरे में कैद कर लिया। सहज प्रेम की स्थितियाँ जैसे हाथ से – मन से छूटती चली जा रही हैं। 'प्रियजन' की चारु इसलिए अकेलेपन का शिकार है क्योंकि उसने दूसरा विवाह नहीं किया। पति के मरने के बाद भी प्रेम की छटपटाहट तो भीतर है, पर समाज की मर्यादाओं के तहत 'विधवा विवाह' कहाँ मान्य है और फिर बच्चे–बहुएँ भी तो हैं। पर ये 'प्रियजन' उसके साथ रहते ही कहाँ हैं? वह निकेत से क़हती है–

''मने कशुं ज गमतुं नथी हवे... अेकली रहुं छुं।''[202]

हिन्दी उपन्यास 'दो एकान्त' की नायिका वनीरा, इसलिए दुःखी है क्योंकि उसका पति विवेक समाज में लोकप्रिय हो रहा है। वह कहती है–

''तुम्हारी व्यस्तता और विवशता दोनों ही जूझती हूँ। विवेक... अपने पर झल्लाहट भी होती है। तुम लोकप्रिय हो रहे हो।''[203]

अति महत्वाकांक्षा और स्वातंत्रता भी मन को दुःखी करती है। जैसे गुजराती उपन्यास की 'अमृता' घर से दूर जाकर स्वच्छंद जिंदगी बिताकर भी टूट जाती है, प्रेमी अनिकेत से कहती है–

''जे पोताने अभीष्ट हती ते स्वतंत्रतानो अर्थ थाय छे – निस्संग अेकलता।''[204]

(जो खुद को अभीष्ट थी उस स्वतंत्रता का अर्थ है– निस्संग अकेलापन।)

हिन्दी उपन्यासों में ममता कालिया के 'बेघर' की नायिका संजीवनी इसलिए निराश, कुंठित और टूट चुकी है, क्योंकि उसके पति परमजीत को विवाह उपरांत उसके कुंवारेपन के न रहने का एहसास हो गया है, वह व्यथा से भरकर सोचती है–

''अब कभी कोई उसकी जिन्दगी में नहीं आएगा।''[205]

इस प्रकार व्यक्ति–स्वातंत्र्य के नाम पर चाहे–अनचाहे मध्यमवर्गीय पात्र अलग–अलग तरह की समस्याओं का भोग बनते हैं। 'आपका बंटी' उपन्यास पति–पत्नी और बेटे के बीच उत्पन्न अलगाव–बोध की समस्या को व्यक्त करता है। इसलिए अपने अपने अकेलेपन में बंटी सोचता है कि उसकी मम्मी अब उसकी नहीं किसी और की हो गई है। 'नारी मुक्ति' का स्वर साठोत्तरी उपन्यास में सबसे ज्यादा अभिव्यक्त है। घर की व्यवस्था को आधार देने वाली नारी प्रशासन–व्यवस्था और व्यवसाय से जुड़ते ही अपने बदलाव

को लेकर प्रस्तुत हुई है। लेकिन ये कहाँ तक उचित है ? क्या आर्थिक सम्पन्न क्षमता ही उसका लक्ष्य था ? बौद्धिक–शिक्षित नारी के चेतना–स्वर अलग–अलग संदर्भों में अलग–अलग रूप में व्यक्त हुए हैं। स्वयं नारी की स्वच्छंद भावनाओं और लिप्साओं ने उसे उलझाकर अधिक समस्या से ग्रस्त भी किया है। प्रेमिका रूप में जह वह धोखा खाती है तो टूटकर बिखर जाती है। जैसे गुजराती उपन्यास की कामिनी। भोग–लिप्सा की कामना में स्वातंत्र्य की ओर बढ़ना क्या वास्तविक चेतना है, नहीं!

नारी–मुक्ति के प्रसंग साठोत्तरी उपन्यासों में अपनी–अपनी परिस्थितिजन्य घटनाओं के बीच उभरते हैं। शिक्षा, उद्योग, बाजारीकरण के बढ़ते हस्तक्षेप में नारी भी एक 'वस्तु' के समान स्थिति पर पहुँची है। 'सम्मान' की बजाय 'शोषण' की ही वह शिकार हुई। बलात्कार, दहेज, तलाक, वेश्यावृत्ति, कुंठा, अकेलापन, संत्रास से गुजरती मध्यमवर्गीय नारी का स्वरूप अधिक है। परन्तु पुरुष के सुख की तुला पर तोली जाने वाली नारी ने स्वयं के गुणों और क्षमता व निर्णय पर अपने प्रगति पथ को भी बढ़ाया, ये स्वर भी साठोत्तरी उपन्यासों में हैं। जैसे 'मुझे चाँद चाहिए' की मध्यमवर्गीय बेटी 'वर्षा वशिष्ठ' या फिर गुजराती उपन्यास 'आगन्तुक' की 'नियति' नौकरीपेशा होकर भी अपने घर की व्यवस्था और खुशी को हासिल करती हैं।

भारतीय नारी पर आशा रानी व्होरा लिखती हैं–

''भारतीय संस्कृति तथा भारतीय महिलाओं की स्थिति पश्चिम से कई मायनो में बहुत अलग है। .... अतीत की समृद्ध परम्परा देख भारतीय पुरुषों, मनीषियों तथा समाज–सुधारकों ने ही पहले–पहल स्त्री की वर्तमान अधोमुखी दशा के बारे में सोचा और उसे इस स्थिति से निकालने के लिए प्रेरित किया।''[206]

पारिवारिक–दायित्व और प्रजनन की स्थिति को तो सहज रूप में स्वीकार कर चलना ही पड़ा है। गुजराती उपन्यास 'बत्रीस पूतळीनी वेदना' की नायक लेखिका अनुराधा अपने घर–बच्चे को भी बेहतरीन ढंग से संभालती है और नाट्यसभा के लिए 'लेखनकार्य' भी करती है। परन्तु नारी चेतना का बौद्धिक तेवर वह भी लिए हुए है 'अनुराधा शाह' की बजाय अपने पुराने नाम 'अनुराधा गुप्ता' से ही वह अपना लेखन कार्य करती है। एक जगह वह अपने दुःख के डंख के साथ हास्य मिश्रित हो कहती है–''पुरुषे ऊभी करेली, पुरुषो द्वारा चलावाती सृष्टिमां अेने टकी रहेवानुं हतुं, स्त्री तरीके, लेखिका तरीके।''[207] (पुरुषों द्वारा खड़ी की गई, पुरुषों द्वारा चालित इस सृष्टि में उसे स्थिर रहना था, स्त्री के रूप में, लेखिका के रुप में।)

हिन्दी उपन्यासकार मोहन राकेश भी नारी चेतना को बलपूर्वक चित्रित करते दिखाई देते हैं। 'अंधेरे बंद कमरे' की सुषमा कहती है:

''मैंने आज तक अपने को किसी पुरुष के सामने हीन नहीं होने दिया, किसी को अपनी कमजोरी का फायदा नहीं उठाने दिया... मैं आर्थिक रूप से किसी पर निर्भर रहना नहीं चाहती। पुरुष में स्त्रियों के प्रति जो संरक्षणात्मक भाव है, वह मुझे बर्दाश्त नहीं।''[208]

इसी प्रकार गुजराती उपन्यास 'आगन्तुक' की पात्रा ईशान की भाभी अपने पति आशुतोष को वाक्‌युद्ध दौरान बेबाकी से कहती है– ''आनाथी सारी रीत मने नथी आवड़ती अने हवे आ उंमरे मारे शीखवी पण नथी।''[209] (इससे और अच्छा तरीका मुझे नहीं आता और अब इस उम्र में सीखना भी नहीं।)

'बत्रीस पूतळीनी वेदना' में इला आरब ने नाट्य मंचन के दौरान स्त्री विषयक लगभग सभी समस्याओं का जिक्र किया है और निष्कर्षतः नारी को नारी ही बनी रहने का आह्वान किया है–

''अमारी प्रेमनी सृष्टिनी खोज अमारे अेक मानवी बनीने करवी छे..... न देवी, न राक्षसी, अमने मात्र स्त्री रहेवा दो।''[210] (हमारे प्रेम जगत की खोज हमें मनुष्य बनकर करनी है... न देवी, न राक्षसी, हमें मात्र स्त्री रहने दो।)

पर प्रश्न यह है कि क्या 'प्रेम' की सुकोमला सत्यता और उदात्तता मध्यमवर्गीय सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक विषम स्थितियों के बीच वह पा सकती है? साठोत्तरी उपन्यासों में नारी के प्रेम और यौन समस्याओं को स्वर देकर उसके विषम परिणामों का रेखांकन किया है। 'प्रेम' शरीर तक की बाह्य दृष्टि पर ही स्थिर होकर रह जाता है, इस बहाने पुरुष नारी–शरीर को तरह–तरह की यातनाएं देता है और स्वयं भी समस्याओं का भोग बनता है। तब जानवर और उसमें अंतर तक महसूस नहीं होता। 'कामिनी' में गुजराती उपन्यासकार ने पाठक के मुख से कहलवाया है– ''आ भूंडणनी जेम पाछळ–पाछळ फर्या करे छे।''[211] (यह सूअर की तरह उसके पीछे–पीछे घूमती है।)

प्रेम या पागलपन की हद ने मध्यमवर्ग में प्रश्न खड़े किए हैं। आखिर प्रेम के संदर्भ में आजादी के क्या मायने हैं? आज़ादी! आखिर कैसी आज़ादी? क्या शारीरिक मात्र? साठोत्तरी हिन्दी–गुजराती उपन्यासों में शारीरिक–आकर्षण देहभोग के चित्र अपनी खुली नग्नता में प्रस्तुत हुए हैं। 'नदी यशस्वी है' उपन्यास में उदयन और कावेरी प्रणय–लिप्सा में अति लिप्त बताए गए हैं –

''वह मेरे होठों को वैसे ही पीती रही जैसे बैल जल पर अपनी थूंथ रख देते हैं और जल पीने लगते हैं।''[212]

वर्णन की ऐसी ही नग्न यथार्थता गुजराती उपन्यास 'निशाचक्र' में भी है जहाँ नायक अपनी प्रेमिका के साथ कामातुर ही अपनी जातीय तीव्रता शांत करता है–

''क्यांक सांकडुं बारुं शोधीने मारामांथी अेक करचलो बहार नीकळ्यो, लसर्यो ने भोंयभेगो उंडाणमां उतर्यो।''[213]

(कहीं संकड़ी–सी खिड़की ढूंढकर, मुझमें से एक केकड़ा बाहर निकला, फिसला और भीतर गहरे में उतर गया।)

इस प्रकार बैल या केकड़ा जैसे कामी जानवरों के दृष्टांतों में प्रेम और यौन के मध्यमवर्गीय चित्रणों का खुलासा किया गया है। अश्लीलता की छुअन साठोत्तरी उपन्यासों में है। प्रेम और यौन ने स्त्री–पुरुष के सहज आकर्षण सम्बन्धों में अतिक्रमण उपस्थित किया है। मुक्त संभोग भोगकर नारी–पुरुष की सहज आत्मीयता कुंठित हुई है। 'ऋतुचक्र' उपन्यास की नायिका प्रतिभा तो धोखेवश दादा से संबंध रखने के कारण गर्भवती हो जाती है और उसे गर्भपात की समस्या से अलग जूझना पड़ता है।

गुजराती उपन्यास 'किम्बल रेवन्सवूड' में तो एक कन्या योगेश को अपने स्वच्छंद यौन संबंधों के बारे में भी सहज रूप से बता देती है। तब ऐसा लगता है कि शिक्षित, बौद्धिक मध्यमवर्ग, उच्च मध्यवर्ग में सेक्स को लेकर एकनिष्ठता वाली धारणा टूट चुकी है। स्वयं योगेश के मध्यमवर्गीय पिता शंकरभाई पटेल योगेश को लड़की पसंद करने की बातचीत के दौरान कहते हैं–

''घरनुं खावानुं न भावे तो अेकादवार होटलमां खाई लीधुं अे अेक वात छे.. पण घर बरबाद करवुं वेपारी माणसने न छाजे। शुं समज्यो?''[214]

(घर का खाना नहीं भाये, तो एकाध बार होटल में खा लेना चाहिए, यह अलग बात है। परंतु घर को बर्बाद करना व्यापारी मनुष्य को नहीं जँचता, क्या समझा?)

स्त्री–पुरुष संबंधों के तहत उसी प्रकार विवाहेत्तर संबंधों की समस्या भी अपनी जगह मध्यमवर्गीय समाज में सहज ही बना लेती हैं। इसका कारण शायद पति–पत्नी का मानसिक तनाव हो, जिसकी वजह से दोनों बाहरी आकर्षण की ओर मुड़ जाते हैं।

हिन्दी उपन्यास 'मन वृंदावन' की पत्नी सुगन अपने पति के मित्र को चाहती है। वहीं गुजराती उपन्यास में प्रीतम सोनी की पत्नी प्रीतम के मित्र सुंदर से प्रेम करती है। इसी प्रकार 'अलग–अलग वैतरणी' हिन्दी उपन्यास में पटहनिया अपने बचपन के मित्र के साथ विवाहेत्तर संबंध रखती है। गुजराती उपन्यास 'ऊर्ध्वमूल' में बच्ची क्षमा की मम्मी सागर अंकल से अवैध संबंध रखती है, तभी तो वह बच्ची मासूमियत से सोचती है–

''सागर अंकल मारा पप्पा होय तो केवुं सारुं।''[215] (सागर अंकल मेरे पापा होते तो कितना अच्छा हो।)

गुजराती उपन्यास 'निशाचक्र' भी विवाहेत्तर संबंधों की सहज अभिव्यक्ति करता है। उसमें नायिका कमसांगकोला का अपने पति के अतिरिक्त अनेक पुरुषों से संबंध है।

इस प्रकार साठोत्तरी मध्यमवर्गीय परिवेश के उपन्यासों में नारी–पुरुष का भोग्या स्वरूप अपने सच के साथ उभरकर सामने आया है।

बेकारी, भ्रष्टाचारी, बेईमानी जैसी समस्याओं के चित्र भी मध्यमवर्गीय परिवारों में उभरे हैं जिनका यथार्थ जिक्र साठोत्तरी हिन्दी–गुजराती उपन्यासकारों ने किया है। मध्यमवर्ग की 'आर्थिक विषमता' और 'जनसंख्या वृद्धि' ने ही बेकारी, बेईमानी जैसी समस्याओं का रूप धारण किया। और इसी कारण चरित्रहीनता भी मध्यमवर्ग में देखी जा सकती है। शराब, मारपीट, झगड़े, तनाव जैसे दिनचर्या में शामिल हो जाते हैं।

हिन्दी उपन्यास 'कंदील और कुहासे' का पात्र किशू होनहार, पढ़ा–लिखा बेकार युवक है। वह मीरा से कहता है– ''मैंने अभी तक एक सौ सत्तर जगहों के लिए अर्जियाँ भेजी हैं। कहीं न कहीं तो इस बेईमानी, भ्रष्टाचार और भतीजावाद के कारण चुन लिया जाऊँगा।''[216]

मध्यवर्ग पैसा कमाने के लिए पहचान और भाई–भतीजेवाद का सर्वाधिक प्रयोग करता है। गुजराती उपन्यास 'किम्बल रेवन्सवूड' में देवुभाई का नौकर पैसे कमाने के लिए अमरिका जाने का वीज़ा निकलवा लेता है, क्योंकि योगेश और पेगी की पहचान उसके लिए मजबूताई सिद्ध होती है। इसी प्रकार योगेश की बहन तरला ने योगेश के जरिए अमरिका की सीटीज़नशिप ले ली थी। पहचान की वजह से ही योगेश की नौकरी में सही मोड़ आता है। मित्र हॅरी का टेलिग्राम उसे मिलता है जिसमें वह पैसे ज्यादा मिलने और अपॉइन्टमेन्ट भेजनी की बात करता है– ''बे अठवाड़िया पछी सीधो सत्तर हजार... विगतवार कागळ अने ऐपोईन्टमेन्ट लेटर जुदी टपालथी मोकलुं छुं.''[217] (दो सप्ताह के बाद सीधे सत्रह हजार... सारी जानकारी और अपॉइन्टमेन्ट लेटर अलग डाक से भेज रहा हूँ।)

इस प्रकार नौकरी यदि है तो पैसे और पहचान से ही, अन्यथा मध्यमवर्ग बेकारी से जूझता रहता है। हिन्दी उपन्यास 'अमृत और विष' का बी.ए. पास युवा लच्छु नौकरी के दरमियान मास्को तक घूम आता है, लेकिन बाद में उसे डॉक्टर साहब नौकरी से निकाल देते हैं, लम्बे समय तक वह बेरोजगारी का सामना करता है। इसी प्रकार गुजराती उपन्यास 'अमृता' में भ्रष्ट शिक्षानीति के कारण उदयन (प्रोफेसर) वहाँ के

प्रिंसीपल के सामने इस्तीफा रख देता है। और आगे का जीवन बेकारी में गुजारता है। इस प्रकार साठोत्तरी उपन्यासों में हम देखते हैं कि मूल्यों को जीने वाले लोगों को कई बार अपनी जिंदगी दाँव पर भी लगानी पड़ती है, क्योंकि वे भ्रष्ट–व्यवस्था के साथ तालमेल नहीं कर पाते। राही मासूम रज़ा के हिन्दी उपन्या 'टोपी शुक्ला' पीएच.डी. होने के बावजूद बेरोजगारी जीता है और अन्ततः इस संसार से ही चला जाता है। 'कंदील और कुहासे' का पात्र किशू भी नौकरी ढूंढते–ढूंढते कुत्ते की मौत मारा जाता है।

इस प्रकार साठोत्तरी उपन्यासों में मध्यमवर्गीय जीवन की त्रासद स्थितियों का उल्लेख सहज रूपों में हुआ है। बेरोजगारी, भ्रष्टाचारी, बेईमानी, स्वच्छंदता से उपजी नारी पुरुष के तनाव, प्रेम–द्वन्द्व, यौन–कुंठाएँ, विधवा, तलाक, दहेज इत्यादि अनेक रूपों में मध्यमवर्गीय जीवन की तस्वीर हिन्दी–गुजराती के साठोत्तरी उपन्यासों में अभिव्यक्त है।

लोकतंत्र के सच्चे स्वरूप, मानवता के मूल्य, सात्विक प्रेम के स्वरूप को ढूंढते, यथार्थ जीवन की कहानियाँ कहते ये उपन्यास अपने युग–परिवेश–पात्र–संवाद और शिल्प के अनूठे प्रयोगों के साथ साठोत्तरी उपन्यास साहित्य–जगत् का साक्षात् कराते हैं, इन्हें पढ़ना स्वयं में भारत की आधुनिक संस्कृति को जान लेना है।

* * * *

चतुर्थ अध्याय : संदर्भ सूचि

1. राजेन्द्र प्रताप : हिन्दी उपन्यास – तीन दशक, पृ. 84
2. पं. बाल कृष्ण भट्ट : डॉ. राजेन्द्र कुमार वर्मा–हिन्दी गद्य के निर्माता, पृ. 255
3. वही – पृ. 255
4. जयश्री बारहट्टे : हिन्दी उपन्यास – सातवाँ दशक, पृ. 112
5. ललित अरोड़ा : उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा – एक अध्ययन, पृ. 180
6. नरेश महेता : दो एकान्त, पृ. 141
7. उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा : भूले बिसरे चित्र, पृ. 156–157
8. यशपाल : झूठा–सच, पृ. 344
9. डॉ. राजेन्द्र प्रताप : हिन्दी उपन्यास – तीन दशक, पृ. 87
10. वही – पृ. 87
11. डॉ. स्वर्णलता : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, पृ. 51
12. नरेश महेता : यह पथबंधु था, पृ. 71
13. जयश्री बारहट्टे : हिन्दी उपन्यास, सातवाँ दशक, पृ. 112
14. अमृतलाल नागर : अमृत और विष, पृ. 228
15. सच्चिदानंद 'धूमकेतु' : माटी की महक, पृ. 53
16. रामदरश मिश्र : जल टूटता हुआ, पृ. 67
17. जयश्री बारहट्टे : हिन्दु उपन्यास – सातवाँ दशक, पृ. 159
18. रमेश बक्षी : बैसाखियों वाली इमारत, पृ. 159
20. चंद्रकांता : एलान गली जिंदा है, पृ. 157, 158
21. डॉ. हेमचन्द्र पानेरी : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास – मूल्य संक्रमण, पृ. 162,163
22. रामदरश मिश्र : जल टूटता हुआ, पृ. 67
23. जैनेन्द्र : अनन्तर, पृ. 165–163
24. गुरुदत्त : गिरते महल, पृ. 31
25. वही – पृ. 32

26. वही – पृ. 32
27. डॉ. हेमेन्द्र पानेरी : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, मूल्य संक्रमण, पृ. 163
28. सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास, पृ. 135
29. राजकमल चौधरी : मछली मरी हुई, पृ. 119
30. महेन्द्र भल्ला : एक पति के नोट्स, पृ. 45
31. कृष्णा सोबती : मित्रो मरजानी
32. श्री लाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ. 129
33. ललित अरोड़ा : उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा – एक अध्ययन, पृ. 176
34. यशपाल : बारह घण्टे, पृ. 103
35. जयश्री बारहट्टे : हिन्दी उपन्यास – सातवाँ दशक, पृ. 130
36. प्रभाकर माचवे : एक तारा, पृ. 33
37. राजकमल चौधरी : मछली मरी हुई, पृ. 93–94
38. शिवानी – चौदह फेरे, पृ. 246
39. चन्द्र : चूनर की पीड़ा, पृ. 14
40. रांगेय राघव : दायरे, पृ. 94
41. जैनेन्द्र : अनन्तर, पृ. 32
42. डॉ. राजेन्द्रकुमार शर्मा : हिन्दी गद्य के निर्माता बालकृष्ण भट्ट, पृ. 263
43. भगवतीप्रसाद वाजपेयी : चलते-चलते, पृ. 204
44. अमृतलाल नागर : अमृत और विष, पृ. 183
45. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृ. 44
46. रामदरश मिश्र : पानी के प्राचीर, पृ. 218
47. नागार्जुन : उग्रतारा, पृ. 98
48. कुंवरनारायण : हिन्दी उपन्यास : सामाजिक चेतना
49. ललित अरोड़ा : उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा – एक अध्ययन, पृ. 157
50. वही – पृ. 157

51. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : कितने चौराहे, पृ. 39
52. सच्चिदानंद धूमकेतु : माटी की महक, पृ. 214
53. नरेश महेता : यह पथबंधु था, पृ. 488
54. रामदरश मिश्र : जल टूटता हुआ, पृ. 35–36
55. जयश्री बारहट्टे : हिन्दी उपन्यास – सातवाँ दशक, पृ. 154
56. भगवतीप्रसाद : थके पाँव, पृ. 96
57. वही – पृ. 108
58. विद्याशंकर राय : हिन्दी उपन्यास और अजनबीपन, पृ. 74
59. मोहन राकेश : अंधेरे बन्द कमरे, पृ. 528
60. इलाचन्द्र जोशी : ऋतुचक्र, पृ. 173
61. मार्टिन हैडगर : बोगनींग एण्ड टाईम, पृ. 231
62. सुरेश महेता : दो एकान्त – पृ. 38
63. महेन्द्र भल्ला : एक पति के नोट्स, पृ. 78
64. डॉ. रामदरश मिश्र और डॉ. ज्ञानचंद्र गुप्त : हिन्दी के आँचलिक उपन्यास, पृ. 147
65. रामदरश मिश्र : जल टूटता हुआ
66. ममता कालिया : बेघर, पृ. 58
67. निर्मल वर्मा : वे दिन, पृ. 207
68. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 105
69. जयश्री बारहट्टे : हिन्दी उपन्यास, सातवाँ दशक, पृ. 140
70. मन्नू भण्डारी : आपका बण्टी
71. वही
72. ममता : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : बदलता व्यक्ति, पृ. 145
73. मोहन राकेश : न आनेवाला कल, पृ. 15
74. वही – पृ. 15
75. वही – पृ. 35

76. वही – पृ. 22

77. ममता : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : बदलता व्यक्ति, पृ. 117

78. वही – पृ. 116

79. मोहन राकेश : अंधेर बन्द कमरे, पृ. 166

80. डॉ. मंजुलता सिंह – हिन्दी उपन्यासों में मध्यमवर्ग, पृ. 240

81. डॉ. एन. रवीन्द्रनाथ : मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास, पृ. 227

82. डॉ. हेमेन्द्र पानेरी : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण, पृ. 156

83. शह और मात, पृ. 243

84. बीज, पृ. 324

85. राजकमल चौधरी : मछली मरी हुई, पृ. 31

86. रामदरश मिश्र : जल टूटता हुआ, पृ. 130–131

87. वही – पृ. 292

88. वही – पृ. 129

89. इबते मस्तूल : पृ. 103

90. इटा टी सेट, पृ. 159

91. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : हिन्दी उपन्यास – उपलब्धियाँ, पृ. 125

92. मोहन राकेश : अंधेरे बन्द कमरे

93. मधुराय : हाथी के दाँत, पृ. 15

94. लक्ष्मीनारायण : छोटी चम्पा, बड़ी चम्पा, पृ. 114

95. उषा प्रियंवदा : रुकोगी नहीं राधिका, पृ. 61

96. मोहन राकेश : न आनेवाला कल, पृ. 197, 180

97. वात्स्यायन : कामसूत्र परिशीलन, पृ. 2

98. डॉ. हेमेन्द्र पानेरी : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, मूल्य संक्रमण, पृ. 181

99. डॉ. रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास, एक अन्तर्यात्रा, पृ. 93

100. रमणभाई पटेल : सातवें दशक के हिन्दी उपन्यास, पृ. 16

101. रांगेय राघव – दायरे, पृ. 122

102. नरेश महेता : नदी यशस्वी है, पृ. 218

103. यशपाल : झूठा सच, पृ. 218

104. शह और मात, पृ. 58

105. सामर्थ्य और सीता, पृ. 74–75

106. अज्ञेय : नदी के द्वीप, पृ. 314

107. डॉ. हेमेन्द्र पानेरी : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण, पृ. 179

108. मन्नू भण्डारी : आपका बण्टी

109. राजेन्द्र यादव : एक इंच मुस्कान, पृ. 111

110. वही – पृ. 111

111. वही – पृ. 150

112. सुधा अरोड़ा : धर्मयुग(अंक – 10 मई, 1970)

113. रमेश बक्षी : बैसाखियोंवाली इमारत, पृ. 66

114. पथ की खोज, पृ. 15 .

115. डाक बंगला, पृ. 76

116. गिरिधर गोपाल : कन्दली और कुहासे, पृ. 177

117. अमृतलाल नागर : अमृत और विष, पृ. 633

118. डॉ. विमला सिंह : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में भारतीय युवा का स्वरूप, पृ. 135

119. अर्वाचीन गुजराती साहित्यनो इतिहास : एक अध्ययन, पृ. 157

120. विनेश अंताणी : प्रियजन, पृ. 176

121. वही – पृ. 168

122. धीरबहेन पटेल : आगन्तुक, पृ. 20

123. वही – पृ. 21

124. धीरबहेन पटेल : आगन्तुक, पृ. 90

125. रघुवीर चौधरी : अमृता, पृ. 232

126. ईवादेव : मिश्र लोही, पृ. 32
127. रघुवीर चौधरी : अमृता, पृ. 16
128. वही – पृ. 8
129. सुरेश जोशी : छिन्नपत्र, पृ. 116
130. राधेश्याम वर्मा : फेरो, पृ. 10
131. मधुराय : किम्बल रेवन्सवूड, पृ. 160
132. वही – पृ. 61,62
133. किशोर जादव : निशाचक्र, पृ. 15
134. इला आरब महेता : बत्रीस पूतळीनी वेदना, पृ. 21
135. वही, पृ. 21
136. विनेश अंताणी : प्रियजन, पृ. 35
137. वही – पृ. 120
138. सरोज पाठक : नाईटमेर, पृ. 21
139. राधेश्याम शर्मा : फेरो, पृ. 66
140. मधुराय : किम्बल रेवन्सवूड, पृ. 100
141. वही – पृ. 38
142. वही – पृ. 151
143. हरीश मंगलम् : तिराड़, पृ. 82
144. सरोज पाठक : नाईटमेर, पृ. 15
145. सरोज पाठक : नाईटमेर, पृ. 22
146. रघुवीर चौधरी : अमृता, पृ. 196
147. रघुवीर चौधरी : अमृता, पृ. 327
148. इला आरब महेता : बत्रीस पुतळीनी वेदना, पृ. 158
149. सुरेश जोशी : मरणोत्तर, पृ. 34
150. धीरबहेन पटेल : आगन्तुक, पृ. 38

151. वही – पृ. 38

152. सरोज पाठक : नाईट मेर, पृ. 103

153. वही – पृ. 103

154. रघुवीर चौधरी : अमृता, पृ. 279

155. रघुवीर चौधरी : अमृता, पृ. 279

156. इला आरब मेहता : बत्रीस पूतळीनी वेदना, पृ. 176

157. वही – पृ. 167

158. वही – पृ. 68

159. वही – पृ. 69

160. इला आरब महेता : बत्रीस पूतळीनी वेदना, पृ. 70

161. वही – पृ. 176

162. रघुवीर चौधरी : अमृता, पृ. 107

163. वही – पृ. 196

164. वही – पृ. 222

165. वीनेश अंताणी : प्रियजन, पृ. 55

166. मधुराय : किम्बल रेवन्सवूड, पृ. 147

167. मधुराय : कामिनी, पृ. 18

168. रघुवीर चौधरी : अमृता, पृ. 88

169. मधुराय : कामिनी, पृ. 8

170. मधुराय : कामिनी, पृ. 19

171. मधुराय : कामिनी, पृ. 19

172. सुरेश जोशी : मरणोत्तर, पृ. 15

173. वीनेश अंताणी : प्रियजन, पृ. 92

174. सरोज पाठक, नाईटमेर, पृ. 111

175. वही – पृ. 111

176. वही – पृ. 141

177. मधुराय : कल्पतरु, पृ. 41

178. किशोर जादव : निशाचक्र, पृ. 22

179. सरोज पाठक : नाईटमेर, पृ. 129

180. ईवादेव : मिश्र लोही, पृ. 80

181. विनेश अंताणी : प्रियजन, पृ. 160

182. वही – पृ. 121

183. वही – पृ. 224

184. भगवतीकुमा शर्मा : उर्ध्वमूल, पृ. 24–26

185. सरोज पाठक : नाईटमेर,पृ. 29

186. मधुराय : सभा, पृ. 136

187. मधुराय : किम्बल रेवन्सवूड, पृ. 16

188. धीरुबहेन पटेल, आगन्तुक, पृ. 26

189. ईवादेव : मिश्र लोही : पृ. 81

190. ईला आरब महेता : बत्रीस पूतळीनी वेदना, पृ. 124

191. रघुवीर चौधरी : अमृता, पृ. 78

192. सुरेन्द्र वर्मा : मुझे चाँद चाहिए, पृ. 110

193. भगवतीचरण वर्मा : भूले बिसरे चित्र, पृ. 156

194. धीरुबहेन पटेल : आगन्तुक, पृ. 20

195. रमेश बक्षी : बैसाखियोंवाली इमारत, पृ. 159

196. मधुराय : कामिनी, पृ. 71

197. महेन्द्र भल्ला : एक पति के नोट्स, पृ. 50

198. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृ. 44

199. सरोज पाठक : नाईटमेर, पृ. 15

200. फणीश्वरनाथ रेणु : कितने चौराहे, पृ. 39

201. भगवतीप्रसाद : थके पाँव, पृ. 108
202. वीनेश अंताणी : प्रियजन, पृ. 35
203. नरेश महेता : दो एकांत, पृ. 38
204. रघुवीर चौधरी : अमृता, पृ. 327
205. ममता कालिया : बेघर, पृ. 58
206. आशारानी व्होरा – भारतीय नारी : दशा और दिशा, पृ. 11
207. इला आरब महेता : बत्रीस पूतळीनी वेदना, पृ. 5
208. मोहन राकेश : अंधेरे बंद कमरे, पृ. 208
209. धीरुबहेन पटेल : आगन्तुक, पृ. 38
210. इला आरब महेता : बत्रीस पूतळीनी वेदना, पृ. 176
211. मधुराय : कामिनी, पृ. 79
212. नरेश महेता : नदी यशस्विनी है, पृ. 218
213. किशोर जादव : निशाचक्र, पृ. 22
214. मधुराय : किंबल रेवन्सवूड, पृ. 7
215. भगवतीकुमार शर्मा : उर्ध्वमूल, पृ. 24
216. गिरिधर गोपाल : कंदली और कुहासे, पृ. 177
217. मधुराय : किम्बल रेवन्सवूड, पृ. 101

* * * * *